Pradeep Raj P. “ Search for the cultural identity of India in contemporary Hindi poetry (With special reference to 1980-2000)” Thesis. Department of Hindi, University of Calicut, 2017

# तीसरा अध्याय

# हिन्दी कविता सन् 1980 तक : प्रमुख प्रवृत्तियाँ

हिन्दी कविता का इतिहास अपनी मिट्टी और आबोहवा से जुड़ी हुई है। अपनी विकास यात्रा के हर पड़ाव में उसने आम आदमी और उसकी वैविध्यपूर्ण संस्कृति से अपना नाता जोड़ा है और उसके संघर्ष को अभिव्यक्ति दी है। इस वजह से हम यह कह सकते हैं कि हिन्दी कविता का मूल स्वर प्रगतिशील रहा है और आज भी वह अपनी इसी रुख को कायम रखने की पूरी कोशिश कर रही है। भारत बड़े लम्बे समय से औपनिवेशिक गिरफ्त में रहा है आज भी उसकी सांस्कृतिक विरासत खतरे में है। अतः हिन्दी कविता के इतिहास आ अध्ययन करते समय यह विदित होता है कि उसका साहित्य मूलतः इंसान और उसके संस्कृति पर आधारित रही है एवं उसका तेवर प्रतिरोधी रहा है।

हिन्दी कविता के इतिहास पर नज़र डालने से यह स्पष्टतः प्रतीत होता है कि उसमें पुरानी व्यवस्था का विरोध और जनतंत्र की तरफ बढ़ने की ख्वाहिश है और जिसमें देश–विदेश की घटनाओं तथा जन–आंदोलनों की गहरी छाप है। बदलती सामाजिक परिस्थिति उससे जुड़ी संस्कृति को भी बदलता है। उसी प्रकार समय और समाज के बदलाव के साथ कविता की संवेदना और उसकी अभिव्यक्ति के तौर–तरीके भी बदलते हैं। युगीन परिस्थिति एवं यथार्थ, उस युग की कविता के प्रवृत्तियों पर अपना असर छोड़ता है। अतएव कविता की कोई शाश्वत प्रतिमान नहीं होती है। वह समय के परिवर्तन के साथ अपने में भी परिवर्तन एवं परिवर्द्धन लाता है। यही कारण है कि हिन्दी कविता ने हर युग में विकास के एक नए प्रतिमान के निर्माण में पहलकदमी की है। यदि हम हिन्दी कविता के इतिहास की युगीन प्रवृत्तियों पर एक नज़र डालें तो उसे मुख्यतः पॉच भागों में विभक्त कर सकते हैंः–

3.1.आदिकालीन हिन्दी कविता

3.2.भक्तिकालीन हिन्दी कविता

3.3.रीतिकालीन हिन्दी कविता

3.4.आधुनिक हिन्दी कविता

इस विभाजन के आधार पर सन् 1980 तक के हिन्दी कविता की प्रवृत्तियों पर बारीकी से नज़र डाला जा सकता है।

3.1. **आदिकालीन हिन्दी कविता :** आदिकाल की रचनाओं को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में रखा जा सकता है – किसी संप्रदाय या मत से जुड़ी रचनाएँ और राज दरबार के आश्रित चारण कवियों की रचनाएँ। आदिकाल में मुख्यतः अपभ्रंश, पिंगल, डिंगल, राजस्थानी, मगधी एवं खड़ी के काव्य मिलते हैं। इस काल की रचनाओं को मुख्यतः दो भागों में बॉटा जा सकता है – आध्यात्मिक और लौकिक। आध्यात्मिक रचनाओं में सिद्ध, नाथ व जैन साहित्य आता है और लौकिक में रासो साहित्य, प्रेम कथा साहित्य, पहेली, मुकरियॉ आदि। इन रचनाओं के आधार पर आदिकालीन साहित्य में निम्नलिखित प्रवृत्तियों को रेखांकित किया जा सकता है। यथा – 1. धार्मिक एवं सिद्धांत परक प्रवृत्ति 2. श्रृंगार संबंधी प्रवृत्ति 3. मनोरंजन साहित्य संबंधी प्रवृत्ति 4. प्रेम कथा साहित्य संबंधी प्रवृत्ति एवं 5. वीरगाथा साहित्य संबंधी प्रवृत्ति।

आदिकाल की रचनाओं की शैली, उसकी भाषागत विशेषताओं और उसके हिन्दी खड़ी बोली से निकटता को देखकर उसका सीमांकन संवत् 1050 से संवत् 1375 रखा गया है। काव्य की दृष्टि से आदिकालीन

साहित्य में एक साथ कई परंपराओं का उदय दिखाई पड़ता है। ''नखशिख वर्णन, विरह के विभिन्न रूप, विरहिणी नायिका द्वारा प्रियतम के पास संदेश – प्रेषण, स्वकीय और परकीय के प्रेम की सीमाएँ – ये सब आदिकालीन साहित्य के कथ्य में अन्तर्निहित हैं।''[1] आदिकालीन कवि धार्मिकता एवं ऐहिकता, वीर और श्रृंगार, ईश्वरत्व और मनुष्यत्व के द्वंद्वों का समाहार करने में संलग्न दिखाई देता है।

हर काल का साहित्य उसके सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों से जुड़ा हुआ है। इसलिए किसी भी काल के साहित्येतिहास को समझने के लिए उस काल के परिवेश को ठीक प्रकार से समझना अत्यन्त आवश्यक होता है।

### 3.1.1. **आदिकालीन रचनाएँ एवं उनकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ**

आदिकालीन रचनाओं में मुख्यतः रासो साहित्य, जैन, नाथ एवं सिद्धों की रचनाएं तथा श्रृंगार, प्रेम व मनोरंजन परक रचनाएँ आती हैं।

3.1.1.1**रासो साहित्यः–** वीर रस की प्रमुखता के कारण रासो काव्यों को काफी महत्व मिला। वीर महाकाव्यों में वीरोल्लासपूर्ण वर्णन के साथ जातियता के भाव भी भरे रहते हैं जो जाति की जागृति या उत्थान के सूचक होते हैं। वीर महाकाव्यों में जातीय भावनाओं से प्रेरित उत्साह–उमंग, तथा प्रयास–साफल्य आदि का चित्रण होता है और नायक इन कर्म व्यापारों से सुबद्ध रहता है। देश–जाति के विश्वास तथा रीति रिवाज़ अर्थात् परंपरा एवं सांस्कृतिक रूढ़ियों का मेल भी नायक के चरित्र में रहता है। इसका कारण बताते हुए विश्वनाथ प्रसाद तिवारी कहते हैं – ''भट्ट–चारण राजाश्रित थे और अपने आश्रयदाता के

शौर्य–प्रताप की अनूठी उक्तियॉ काव्यबद्ध करते थे। भारत के इतिहास का यह वह समय था जब उत्तर पश्चिम से अनवरत आक्रमण हो रहे थे। पश्चिम प्रदेश के रजवाड़े आपस में भी लड़ते–झगड़ते रहते थे। कवि ओजस्विनी वाणी से उमंग–उत्साह उद्दीपित करते रहते थे।''[2]

रासो शब्द का अर्थ रास याने काव्य से आया है। राजाश्रित चारण कवि अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा अथवा पराक्रम की कविताऍ करते हैं। रासो काव्य दो प्रकार के मिलते हैं – प्रबंध काव्य और वीरगीत। प्रबंधों का रूप साहित्यिक है, पर वीरगीत लौकिक रूप रंग के हैं। इस काल के प्रमुख रासो काव्य हैं – चंदबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो', दलपति विजय कृत 'खुमान रासो', नरपति नाल्ह कृत 'बीसलदेव रासो', भट्टकेदार कृत 'जयचंद प्रकाश', मधुकर कवि कृत 'जयमयंक जस चंद्रिका', जगनिक कृत 'परमाल रासो' (आल्हाखंड)। यह रचनाऍ मुख्यतः दो शैलियों में लिखी गई हैं –डिंगल तथा पिंगल।

उस समय के कवियों को राजदरबारों में राजा की वीरता, तथा पराक्रम की अत्युक्तिपूर्ण आलाप करना था क्योंकि वीरों का आत्मसम्मान उनके जीवन से भी अधिक महत्व रखता था। ''वीर गाथा काव्य का जीवन राष्ट्रीय सांस्कृतिक परंपरा की एक कड़ी है। उसमें आस्तिक केसाथ आत्मविश्वास, मोक्ष के साथ जीवनानुराग, परलोक के साथ इहलोक आदि विरोधी प्रतीत होने वाले प्रकल्प सर्वत्र अनुस्यूत हैं। वह जीवन व्यापक एवं समृद्ध था। उसमें सूक्ष्म ब्रह्म विचार से लेकर स्थूल अरिमर्दन तक विस्तार था। उस युग में जीवन आत्मसम्मान का ही नाम था, इसलिए सम्मान हानि की अपेक्षा प्राणों की हानि स्वीकार्य समझी

जाती थी''[3]। आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा (ख) युद्धों का सजीव वर्णन (ग) वीर रस की प्रधानता (घ) रसो ग्रन्थ की निर्मिति (च) डिंगल एवं पिंगल भाषा का प्रयोग(छ) प्रकृति चित्रण (ज) जन जीवन से संपर्क नहीं (झ) काव्य के दो रूप – मुक्तक एवं प्रबंध (ट) छंदों एवं अलंकारों का प्रयोग।

### 3.1.1.2. **जैन, नाथ एवं सिद्धों का साहित्य**

आदिकाल में अध्यात्मिक साहित्य लिखे गए हैं जिनमें जैन, नाथ एवं सिद्धों का साहित्य प्रमुख है।

3.1.1.2.1. **सिद्ध साहित्य :** आदिकाल में बौद्ध धर्म महायान और हीनयान में विभाजित हो चुका था और महायान मंत्रयान में व मंत्रयान वज्रयान हो चुका था। मंत्रों द्वारा सिद्धि प्राप्त करने वाले सिद्ध कहलाते थे। सिद्ध कवियों की रचना 'मगही' भाषा में प्राप्त होती है, इसका ऐतिहासिक कारण यह है कि बौद्ध धर्मावलंबी पाल शासक बंगाल और बिहार में थे और उन्हीं के समय विक्रमशिला बौद्ध विश्वविद्यालय स्थापित हुआ था। सिद्धों की कुल संख्या 84 हैं। इनमें मुख्य हैं – सरहपा, शबरपा, लुइपा, डोंम्बिपा, कुकरिपा। इन सिद्धों में प्रायः सभी वर्णों के साधक थे। इनमें शुद्र अधिक थे, उनके बाद ब्राम्हण, फिर क्षत्रिय, कायस्थ चर्मकार,वणिक तथा शेष साधकों में मछुआ, गृहपति, धोबी, लकड़हारा, लोहार, वैश्य, दर्जी आदि।

सिद्धों ने जीवन की स्वाभाविक क्रियाओं को सिद्धि प्राप्त करने में बाधा नहीं कही। ''उन्होंने जीवन को प्राकृतिक रूप के गृहस्थ जीवन में व्यतीत करने पर ज़ोर दिया।''[4] जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों में विश्वास

रखने के कारण ही सिद्धों का सिद्धांत सहज मार्ग कहलाता है। वज्रयान का प्रचार 7वीं शती में होना शुरू हुआ और तब से सिद्धों के साहित्य की रचना भी प्रारम्भ हुई। सरहपा को प्रथम सिद्ध कवि माना जाता है। सिद्ध कवियों ने अपने साहित्य में साधना पक्ष पर ज़ोर दिया है तथा आडम्बरों की निन्दा की है। इन्होंने पाखंड का खण्डन, संप्रदाय अवहेलना एवं मंत्रों की व्यर्थता पर ज़ोर दिया है। वह सदाचार में आस्था रखते थे और जीवन की नैसर्गिक प्रवृत्तियों का अनुचित रूप से दमन या प्रश्रय वे धार्मिक जीवन के लिए हितकर नहीं समझते थे। इन्होंने गुरु को अपनी साधना पथ पर मुक्ति प्राप्त करने का मुख्य घटक माना है। गुरू के बिना मोक्ष की प्राप्ति असंभव है। सिद्ध कवियों में ज़्यादातर कवि शूद्र थे, इसलिए उन्होंने जाति भेद एवं वर्ण भेद पर घोर प्रहार किया है। वैदिक देवताओं के प्रति अनास्था और लोक देवताओं के प्रति आस्था इन सिद्ध कवियों ने प्रकट की है।

इन्होंने ब्राह्मणवाद के पौराणिक रूढ़ियों का खण्डन एवं वेदों के प्रति अवमानना प्रकट की है। इस कारणवश मरणोपरांत मुक्ति या निर्वाण प्राप्ति की अपेक्षा जीवनकाल में सिद्धियों को प्राप्त करने पर इन्होंने ज़ोर दिया है। अतः सिद्धों ने सदाचार एवं मध्यम मार्ग को महत्व दिया। ''जो जनता नरेशों की स्वेच्छाचारिता, पराजय या पतन से त्रस्त होकर निराशावाद के गर्त में गिरी हुई थी, उसके लिए इन सिद्धों की वाणी ने संजीवनी का कार्य किया। निराशावाद के भीतर से आशावाद का संदेश देना – संसार की क्षणिकता में उसके वैचित्र्य का इन्द्रधनुषी चित्र खींचना इन सिद्धों की कविता का गुण था।''[5]सिद्ध कवि अपनी बानी को पहेली या उलटबासीके रूप में रखते हैं। उनकी भाषा अर्ध मागधी अपभ्रंश के

निकट की भाषा है। इनकी रचनाओं में शांत रस की प्रधानता है। इनकी अधिकांश रचना चर्यागीतों में हुई है तथापि इसमें दोहा, चौपाई जैसे लोकप्रिय छन्द भी मौजूद है। इनके लिए प्रिय छन्द दोहा है क्योंकि यह अधिकतर सिद्धांत प्रतिपादन के लिए प्रयुक्त हुआ है। जहॉ वर्णन विस्तार है, वहॉ चौपाई छन्द है। इनके चर्यागीतों विशिष्ट राग–रागिनियों में लिखे गए हैं। यह सिद्ध कवि संसार के दुख या नश्वरता को देखते हुए भी वे उसे छोड़ने का आदेश नहीं देते हैं। ''उसका आदर्श था जीवन की भयानक वास्तविकता की अग्नि से निकलकर मनुष्य को 'महासुख' की शीतल सरोवर में अतगाहन कराना।''[6]

3.1.1.2.2. **जैन साहित्य :** जैन धर्म अहिंसा को ही परम धर्म मानता है। आचार को सुदृढ़ अनुशासन में रखकर सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव के प्रति भी दया और करुणा का व्यवहार करना कर्म का आदर्श है। इनमें त्याग की भावना भी मुख्य है। जैन साहित्य के प्रमुख कवि हैं – स्वयंभू देव, आचार्य देवसेन, महाकवि पुष्पदंत, धनपाल, मुनि रामसिंह, अभयदेव सूरि, कनकामर मुनि, जिन वल्लभ सूरि, शालिभद्र सूरि। इनकी प्रमुख रचनाएं हैं :– पउमचरिउ (स्वयंभू), दर्शन सार (देवसेन), जय कुमार चरिउ (पुष्पदंत), तिलक मंझरी (धनपाल), पाहुड दोहा (मुनि रामसिंह), बाहुबलि रास (शालिभद्र सूरि) आदि हैं।

जैन कवियों ने संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश भाषाओं में अपनी रचना प्रस्तुत की है। इनकी रचनाएॅ मुख्यतः धार्मिक, साहित्यिक व ऐतिहासिक होती हैं। गृहस्थों के लिए सिद्धांत–प्रतिपालन व उपदेशात्मक रचनाएॅ

होती हैं और उपासकों के लिए दर्शन संबंधी रचना। उपदेशात्मक रचनाका एक उदाहरण ध्यातव्य हैः–

''भोगहं करहि पमाणु जिय, इंदिप मकरि सदप्प।

हुंति ण भल्ला पोसिया, युद्धों काला सप्प।।''

''(हे जीव! भोगों का भी प्रमाण रख। इंद्रियों को बहुत अभिमानी मत बना।

काले सॉपों का दुग्ध से पोषण करना अच्छा नहीं होता।)''[7]

जीवन की लौकिक एवं अलौकिक पक्षों का वर्णन इनकी रचनाओं में मिलता है। इनकी प्रमुख रचनाऍ हैं – 'पउम चरिउ' (स्वयंभू), 'दर्शन सार' (देवेसेन), 'णय कुमार चरिउ', 'महापुराण' (पुष्पदन्त), 'तिलक मंझरी' (धनपाल), 'पाहुड़ दोहा' (मुनि रामसिंह), 'सुदंसण चरिउ' (कनकामर मुनि), 'बाहुबलि रास' (शालिभद्र सूरि), 'कुमारपाल प्रतिबोध' (सोमप्रभ सूरि) आदि। इनकी रचनाओं में तीर्थंकरों का चरित्र, उनकी यात्रा एवं यात्रा के दौरान प्रकृति वर्णन भी मिलता है। यद्यपि इनकी रचनाओं में धर्म पक्ष मूल में रहती है मगर किसी कन्या के ज़रिए होती है। इनमें मात्र उपदेशपरक रचनाऍ न रहकर इतिहास वर्णन भी मिलता है। श्री मेरूतुंग की रचना 'प्रबंध चिंतामणि' में प्राचीन ऐतिहासिक व्यक्तियों और राजाओं के चरित्र को कथा रूप में संकलित किया है। ऐसा करके इतिहास का विशेष रूप से रक्षा की गई है। इस तरह के अन्य कृतियॉ हैं – 'कुमारपाल चरित' (हेमचंद्र), 'कुमारपाल प्रतिबोध' (सोमप्रभ सूरि), 'जम्बू स्वामी रासा' (धर्म सूरि), 'रेवंतगिरि रासा' (विजयसेन सूरि) आदि।

इनकी रचनाओं में शृंगार चेष्टाएँ, रूप की आकर्षण शक्ति तथा अनेक प्रकार की हृदयाकर्षक क्रीड़ाएँ वर्णित हैं। इनमें इसके ज़रिए प्रकृति चित्रण, बारहमासा वर्णन आदि भी मिलते हैं। परन्तु अंत में किसी जैन मुनि के उपदेश से तथा उनकी दीक्षा से प्रभावित होकर इनके पात्र कठिन तपस्या करता है और उन्हें मोक्ष की प्राप्ति होती है। ''जैन साहित्य में प्रेम कथाएँ पूर्ण भौतिक उत्कर्ष में है, किन्तु इन भौतिक उत्कर्षों में नश्वरता की भावना लेकर अलौकिक पक्ष या अध्यात्मिक पक्ष की ओर संकेत किया गया है।''[8]जैन साहित्य में नागर अपभ्रम्श भाषा का अधिक प्रयोग हुआ है। यह भाषा अधिकतम पद्य रूप में ही है। जहॉ इसका गद्य रूप है वहॉ टिप्पणियॉ मिलती हैं। यद्यपि इनकी कुछ रचनाएँ संस्कृत में हैं परन्तु उनमें केवल अलंकार निरूपण या नायिका भेद है। अपभ्रम्श में रचित इनकी अधिकतर रचनाएँ धर्मपरक होती है क्योंकि वे साहित्य की अपेक्षा धर्म प्रचार में अधिक ध्यान देते थे। जैन साहित्य में अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गयाहै। उनमें कुछ हैं – चरित्र, रास, चतुष्पदी, चौढालिया, ढाल, कवित्त, छन्द, दोहा आदि। सबसे अधिक दोहा का प्रयोग हुआ है।

जैन साहित्य में अनूदित ग्रन्थों की अधिकता है। इस कारण आलोचक डॉ. रामकुमार वर्मा बताते हैं कि – ''हिन्दी जैन साहित्य गृहस्थों या श्रावकों द्वारा लिखा गया है। गृहस्थ या श्रावकों को भय था किवे स्वतंत्र ग्रन्थ रचना करते समय कहीं धर्म विरुद्ध कोई अनुचित बात न कह दें। अतएव उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के सिद्धांतों का ही अनुसरण किया और उन्हीं के ग्रन्थों को अनुवादित किया।''[9]

3.1.1.2.3.**नाथ साहित्य** :– सिद्धों की भांति नाथों ने जीवन में सदाचार को महत्व दिया है। इन्होंने धर्म के तहत कर्मकांड की रूढ़ियों के खिलाफ आवाज़ उठाई है। नाथ संप्रदाय के प्रमुख नाथ मुनियॉ हैं – आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, चौरंगीनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, भर्तृनाथ, गोपीचन्दनाथ आदि। नाथ मुनियों ने संसार की नश्वरता और वैभव विलास की निस्सारता को बड़े भावमय शब्दों में गाया है। नाथ एकेश्वरवाद में विश्वास रखने वाले हैं। इन्होंने इंन्द्रीय निग्रह पर विशेष बल दिया है। इनकी रचनाओं में इन्होंने गुरू की महिमा का वर्णन किया है क्योंकि मुक्ति की राह गुरू ही दिखाता है। इनके अनुसार मुक्ति के तीन प्रमुख मार्ग हैं– इंद्रिय निग्रह, प्राण साधना और मन साधना। इन तीन मार्गों में व्यक्ति को अग्रसर होने के लिए उसे एक गुरु की आवश्यकता है।

नाथ मुनियों ने अपने साहित्य में पाखंड का खुलकर खण्डन किया है। इनमें मंत्र व्यर्थता और संप्रदाय अवहेलना भी है। ''गोरखनाथ ने नाथ संप्रदाय को जिस आंदोलन का रूप दिया, वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ। उसमें जहॉ एक ओर ईश्वर की निश्चित धारणा उपस्थित की गई वहॉ दूसरी ओर धर्म को विकृत करने वाली समस्त परंपरागत रूढ़ियों पर कठोर आघात भी किया गया।''[10]

इसके अलावा नाथ साहित्य में रसायन सिद्धि, नाड़ी साधना, कुंडलिनी जागरण, षट्चक्रभेद, अनाहत नाद जैसे विषयों पर भी रचनाएं मिलती हैं। इन्होंने शिव–शक्ति को आदि तत्व माना है। आचरण की शुद्धता तथा शील की ओर इन्होंने अधिक महत्व दिया है। इनकी रचनाओं में किसी भी विषय को रहस्यात्मक शैली में इन्होंने अभिव्यक्ति

दी है। उलटबांसियों का प्रयोग भी इन्होंने किया है। इनकी रचनाओं में प्रमुख रस शांत रस है। इन्होंने दोहा–साखी आदि छंदों का अधिक प्रयोग किया है।

3.1.1.3. **श्रृंगार एवं मनोरंजन का साहित्य**:– इन कवियों ने वस्तुवाद का यथातथ्य चित्रण करते हुए जीवन की उपयोगिता और उसकी नैतिक दृष्टि की ओर ध्यान दिया है। इस श्रेणी के प्रमुख कवियों में अब्दुर्रहमान, बब्बर, अमीर खुसरो, मुल्ला दाऊद आदि आते हैं, जिन्होंने संयोग और वियोग के बड़े हृदयाकर्षक चित्र खींचे हैं। ''ऐसे हृदयाकर्षक चित्रों में प्रकृति वर्णन और उसके अनुरूप संयोग या वियोग की बड़ी सुन्दर मनोवैज्ञानिक झांकियॉ प्रस्तुत की हैं।''[11] इस श्रेणी की प्रमुख रचनाओं में अब्दुर्रहमान कृत 'संदेश रासक', अमीर खुसरो कृत 'पहेलियॉ व मुकरियॉ', मुल्ला दाऊद कृत 'चंदायन', विद्यापति कृत 'कीर्तिलता', 'कीर्तिपताका' आदि आते हैं। इन कवियों ने लौकिक जीवन के विकारों को बड़ी सादगी के साथ अपनी रचनाओं के माध्यम से दिखाया है। प्रेमकथाओं का चित्रण इन्होंने किया है। इनकी रचनाओं में नारी के रूप का वर्णन मिलता है। सौन्दर्य और वैभव का चित्रण होने के बावजूद, इनमें अध्यात्मिक जीवन का भी वर्णन हुआ है।परन्तु अन्त में निवृत्ति का मार्ग प्रशस्त किया है। नैतिक दृष्टि को बरकरार रखते हुए इन्होंने संयोग एवं वियोग पक्ष का चित्रण किया है। इन्होंने प्रकृति के हलचलों को मानव मन के उतार–चढ़ाव से संबद्ध किया है। इस तादात्म्य का वर्णन करने हेतु इन्होंने मनोरंजनार्थ कौतूहलजनक शब्द चमत्कार का प्रयोग किया है।

इस प्रकार देखें तो आदिकाल की रचनाएँ विषयगत, शैलीगत एवं भाषागत दृष्टि से विविधोन्मुखी है। इनमें प्रयोगों की अनेकरूपता है व भावाभिव्यंजन की साधारण शैली है। सिद्धों की भाषा में मगही का प्रभाव है। जैन कवियों में प्राकृत और अपभ्रम्श का प्रभाव है तो रासो साहित्य ड़िंगल एवं पिंगल भाषा में रचित है। नाथ कवियों में अर्ध मगधी का प्रभाव है। अब्दुर्रहमान की रचना पर पश्चिमी प्रभाव है और अमीर खुसरो की मुकरियॉ तथा पहेलियॉ दिल्ली के आस पास के इलाके की खड़ी बोली से शासित हैं।

## 3.2 **भक्तिकालीन हिन्दी कविता**

भक्तिकाल की रचनाओं को मुख्य रूप से दो धाराओं में विभक्त कर सकते हैं – निर्गुण काव्यधारा व सगुण काव्यधारा। आगे चलकर निर्गुण काव्यधारा को दो शाखाओं में विभक्त कर सकते हैं – ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा। सगुण काव्य धारा को दो शाखाओं में विभक्त कर सकते हैं – रामभक्ति शाखा व कृष्णभक्ति शाखा। भाषा की दृष्टि से ब्रज, अवधि, खड़ी बोली, उर्दू, फारसी, अरबी आदि का प्रयोग भक्तिकाल की रचनाओं में हुआ है। सामान्यतः भक्तिकाल का सीमांकन सन् 1375 से 1700 तक किया गया है। भक्तिकाल की रचनाओं में एक विशेष बात यह है कि वह हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच समन्वय पर ज़ोर दिया है। इस काल के प्रमुख कवि हैं – कबीर, तुलसीदास, सूरादास, जायसी, मीराबाई, रहीम आदि। इन कवियों ने अपनी भाषा और रचना शैली को लोक परंपरा से जोड़ने की भरपूर कोशिश की है। भक्तिकालीन कवि मानवीय मूल्यों को अधिक महत्व देते थे। उनके लिए

व्रत, तीर्थ, पूजा, धार्मिक आचारों, आदि रूढ़िवादिता एवं भक्ति के नाम पर आडम्बर है। ''भक्तिकालीन कवि सदाचार व अहिंसा जैसे मूल्यों को बहुत बड़ा सत्य मानते हैं और मिथ्याचार के घोर निंदक हैं। उनके लिए भक्ति का मूल्य जाति, धर्म, कुल, धन, सांसारिक ऐश्वर्य में नहीं है बल्कि भक्ति का केवल एक ही मूल्य है, प्रेम।''[12]

### 3.2.1.**निर्गुण काव्यधारा**

निर्गुण की उपासना इनका प्रमुख ध्येय है। इन्होंने ईश्वर को निराकार माना है। परमात्मा प्रकृति के कण कण में मौजूद है। इसलिए ईश्वर को किसी आकार या रूप में बांधना व्यर्थ है। ''परमात्मा चारों ओर हैं। अर्थात् भगवान कण–कण में हैं, किन्तु उसे हम भूलकर व्यर्थ में इधर–उधर भटकते हैं जबकि वह अपने घट में निवास करता है। ''काहे रे वन खोजन जाई। सर्व निवासी सदा अलोपा तोही संग समाई।''[13]इन्होंने गुरू को मोक्ष प्राप्ति के राह में भक्त को अग्रसर करने वाला माना है। इनके अनुसार साधक गुरू के बिना कभी भी अध्यात्म के सही राह पर चल नहीं सकेगा। इन्होंने गुरु को ईश्वर से भी अधिक महत्व दिया है।

निर्गुण कवियों ने अवतारवाद का विरोध किया है। वे बहुदेववाद के कट्टर विरोधी थे। ''उस समय हिन्दू–मुसलमानों में द्वेष की अग्नि भड़क उठी थी, उसे शांत करने के लिए इन कवियों ने एकेश्वरवाद का संदेश सुनाया है।''अक्षय पुरूष इक पेड़ है, निरंजन बाकी डार।/त्रिदेव शाखा भये, पात भये संसार।।''[14]निर्गुण संत कवियों ने सामाजिक कुप्रथाओं व बेतुके आडम्बरों का विरोध किया है। इन्होंने रूढ़ियों का खण्डन किया

है। स्वांग एवं कुरीतियों की इनके द्वारा कटु आलोचना हुई है। इन्होंने मूर्ति पूजा का खण्डन किया है। इनका दर्शन रहस्यवाद पर आधारित है। इनके रहस्यवाद पर सूफियों का प्रभाव है। इसमें आत्मा को पत्नी के रूप में तथा परमात्मा को पति के रूप में देखा जाता है। प्रणयानुभूति के साथ विरहानुभूति का भी दर्शन इनमें होता है।''ऑखड़ियॉ झॉई पड़ीं, पंथ निहारि निहारि।/जीभड़ियॉ छाला पड्या, राम पुकारि पुकारि।।''जाति–पांति के भेद–भावों का घोर विरोध इन्होंने किया है। उन्होंने ऊॅच–नीच, छुआ–छूत आदि भेद–भावों को समय–समय पर विरोध करके मिटाने की कोशिश की है। ''उनका मानना है कि भक्ति के क्षेत्र में भगवान जाति के नहीं भाव के भूखे होते हैं, उनके लिए न कोई छोटा है और न कोई बड़ा है। 'जाति पांति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।''[15]

इनमें वैयक्तिक साधना का महत्व है। इनके अनुसार, वैयक्तिक साधना के माध्यम से आत्मशुद्धि तथा आचरण की पवित्रता प्राप्त की जा सकती है। इन्होंने प्रतीकों और उलटबासियों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। लौकिक के साथ अलौकिक के काल्पनिक एवं यथार्थ अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए इन्होंने प्रतीकों का आश्रय लिया है। इनमें सत्संग, भजन तथा नाम स्मरण का महत्व है। ईश्वर प्राप्ति के लिए प्रेम और नामस्मरण को परमावश्यक माना गया है। विरह की मार्मिक उक्तियॉ इनके काव्य में मिलती हैं। श्रृंगार एवं शांत रस का अधिक चित्रण हुआ है। इनकी रचनाओं में संयोग एवं वियोग का बड़ी बारीकी के साथ वर्णन हुआ है।संत कवियों ने नारी को माया का एक रूप माना है। कबीर का एक दोहा इस प्रकार है –''नारी की झॉई परत, अंधा होत

भुजंग।/कबिरा तिनकी कौन गति, नित नारी के संग।।''निर्गुण संत कवियों की रचनाओं में गेयमुक्तक शैली का प्रयोग हुआ है। इनमें गीतिकाव्य के सभी तत्वों का प्रयोग दिखाई पड़ता है, यथा भावात्मकता, संगीतात्मकता, सूक्ष्मता, वैयक्तिकता, कोमलता आदि। काव्यों में दोहा, चौपाई, साखी आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनकी भाषा को खिचड़ी या सधुक्कड़ी भाषा भी बोली जाती है।

### 3.2.2. **सगुण काव्य धारा**

इस काव्यधारा में ईश्वर की सगुण व साकार रूप को स्वीकार्य किया गया है। इसमें राम तथा कृष्ण मुख्य आराध्य देव हैं। सगुण साधना में रूपोपासना का मुख्य स्थान है। सगुण भक्त कवियों को पूरा जगत भगवान का अवतार दिखाई देता है। इनके अनुसार जब धर्म की ग्लानि और अधर्म का अभ्युत्थान होता है तब भगवान मानव रूपमें जन्म लेते हैं। ''कवि ज्ञान, कर्म, ऐश्वर्य, प्रेम आदि को भगवान के रूप मानते हैं, इसलिए इनमें लीलावाद का महत्व है। चाहे तुलसी के राम हो या सूर के कृष्ण दोनों लीलाकारी हैं। इनके अनुसार अवतार का उद्देश्य ही लीला है।''[16]इन्होंने शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खण्डन किया है। इनके यहॉ जात–पांत का बंधन नहीं है क्योंकि इनका मानना है कि भक्ति पर सभी का समान हक है। संतों की भांति सगुण कवि गुरु को महत्ता देते हैं। ''वे गुरु को गोविंद से श्रेष्ठ मानते हैं। गुरू के बिना मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होने वाले पथ से भक्त पथ भ्रष्ट हो जाएगा।''[17]इस संदर्भ में तुलसीदास की ये पंक्तियॉ ध्यातव्य हैं –''श्री गुरू पद नख – मुनि गन ज्योति,सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।''इन कवियों ने लोक जीवन का

चित्रण किया है। कवियों ने अपनी–अपनी दृष्टिकोण के ज़रिए जनता के लिए राम और कृष्ण का वर्णन किया है। कृष्ण की बाल लीलाओं का चित्रण, राम की शील, शक्ति और सौन्दर्य का चित्रण कर भक्तों को कवि आनन्द के साथ–साथ यह विश्वास भी दिलाता है कि सत् की रक्षा और असत् का विनाश होता है। इन भक्त कवियों ने भक्ति के विभिन्न रूपों जैसे – श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, सख्य, दास्य और आत्मनिवेदन का चित्रण कर अपने आराध्य की लीलाओं में मग्न होकर मोक्ष प्राप्त करने का प्रयास किया है। इनकी काव्य रचना का मूल उद्देश्य यही था। इन भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं में राम व कृष्ण के अलावा अन्य देवी–देवताओं की स्तुति, ज्ञान, भक्ति व कर्म का तथा सगुण एवं निर्गुण में समन्वय की स्थापना की है। इनके काव्यों में राम और कृष्ण के साथ–साथ अन्य सभी पात्र आदर्श पात्र हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि वह पहले भक्त हैं फिर कवि हैं।

भाषा की दृष्टि से राम काव्य में शांत रस और कृष्ण काव्य में श्रृंगार रस मुख्यतः मिलता है। युद्ध के अवसर पर वीर और रौद्र रस का भी परिपाक हुआ है। इन सभी में मूल रस भक्ति है। उसी प्रकार दोहा, चौपाई, सोरठा, सवैय्या आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। काव्य शैली की दृष्टि से लोक मंगल की भावना इनमें विद्यमान है तथा प्रबंध, गीत, संवाद, रीति आदि पद्धतियों का दर्शन होता है।

### 3.2.3 **प्रेम मार्गी सूफी काव्यधारा**

हिन्दी का सूफी साहित्य फारस में विकसित सूफी मत की साहित्यिक अभिव्यंजना है। ''सूफी कवियों ने प्रेमगाथाओं के रूप में उस

प्रेम तत्व का वर्णन किया है जो ईश्वर से मिलन का है तथा जिसका आभास लौकिक प्रेम के रूप में मिलता है।''[18] प्रमुख सूफी कवि और उनकी रचनाएँ हैं– कुतुबन–'मृगावती', मंझन–'मधुमालती', मलिक मुहम्मद जायसी–'आखिरी कलाम', उसमान–'चित्रावली', शेख नबी–'ज्ञानदीप', कासिमशाह–'हंस जवाहिर', नूर मुहम्मद–'इंद्रावती'। सूफी साधना के चार अंग बताए जाते हैं – शरीयत, तरीकत, मारिफत और हकीकत।

सूफीयों ने लौकिक प्रेम कहानियों के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की है। यह काव्य प्रबंध काव्य की कोटि में आते हैं, जो भारतीय महाकाव्य की शैली में लिखे गए हैं। इन काव्यों में प्रकृति वर्णन खूब हुआ है। इन कवियों ने अपने काव्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण, ईश सत्ता, हज़रत मुहम्मद की प्रशंसा की है। इनके प्रबंध काव्यों में नायक–नायिका के देश, काल, आचार आदि का उल्लेख एवं कथा में गति लाने के लिए नायक–नायिका के साथ खलनायक–खलनायिका की भी सृष्टि हुई है। उनका प्रबंध काव्य कभी सुखांत या कभी दुखांत होते हैं, जिनमें दार्शनिक दृष्टि निहित होती है।सुफी काव्य के प्रमुख तत्व प्रेमभाव और श्रृंगार रस है। यहॉ नायक को आत्मा और नायिका को परमात्मा माना गया है। ''इस तरह के प्रेम के वर्णन में उन्होंने वियोग पक्ष को ज़्यादा महत्व दिया है क्योंकि उनके अनुसार वियोग जीवन होता है और मिलन–अंत।''[19]मंझन का विरह वर्णन –''कोटि माहि विरला जग कोई।/जहि सरीर विरह दुःख होई।।''विरह में बारह मासा वर्णन मिलता है। नायक–नायिकाओं के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। नायक को विभिन्न कठिनाईयों से जूझते निकलना पड़ता है और अंत में सफलता मिलती है। यहॉ ऐतिहासिक तथा काल्पनिक पात्र दोनों मिलते हैं। सूफी

काव्यों में अंधविश्वास, जादू टोना, लोकोत्सव आदि का चित्रण हुआ है। हिन्दू घराने की प्रेम कहानियों का भी वर्णन मिलता है। हिन्दू पात्रों में हिन्दू आदर्शों की प्रतिष्ठा की गई है। इन्होंने हिन्दू और मुसलमान पात्रों की सृष्टि में केवल मंडनात्मक शैली ही अपनाई है।

प्रेम का केन्द्र नारी है। नारी परमात्मा का प्रतीक है। इन्होंने नारी को संतों की भांति माया नहीं माना है बल्कि शैतान को माया माना है। भाषा परक दृष्टि से सूफी काव्यों में अव्यक्त सत्ता का आभास देते हुए रहस्यात्मकता की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। इनमें सांकेतिक विधान पद्धति का अवलंब लेकर सांकेतिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। इनकी भाषा अवधि रही है। इसके अलावा भोजपुरीएवं ब्रज भाषा का भी प्रयोग हुआ है। दोहा, चौपाई, कुंडलियॉ आदि छंदों का प्रयोग हुआ है। कहीं–कहीं अरबी–फारसी शब्द भी आए हैं। उपमा, अनुप्रास जैसे अलंकारों का अच्छा प्रयोग हुआ है।

## 3.3 रीतिकालीन हिन्दी कविता

रीतिकालीन साहित्य मुख्यतः संवत् 1700 से 1900 तक के कालखण्ड की रचना है। रीतिकाल में परलोक तथा मोक्षादि की चिन्ता नहीं है। इसमें जीवन के प्रति भौतिकवादी दृष्टिकोण को अपनाया गया है। इस काल में मुख्यतः श्रृंगार रस की रचनाऍ लिखी गई हैं। ''रीति ग्रन्थों के कर्ता भावुक, सहृदय, और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगों के शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना।''[20]इनमें अलंकारों की अपेक्षा नायिका भेद पर ज़्यादा झुकाव रहा है। नायिका श्रृंगार रस का आलंबन है। तत्पश्चात् इस आलंबन के अंगों

का वर्णन एक स्वतंत्र विषय बन गया और न जाने कितने ग्रन्थ केवल नखशिख वर्णन के लिखे गए। इसी प्रकार उद्दीपन हेतु प्रयोग में लाए गए षट्–ऋतु वर्णन पर भी कई पुस्तकें लिखी गई। विप्रलंभ संबंधी 'बारहमासा' वर्णन के भी कई रचनाएं हुईं। रीतिग्रन्थों का विकास अधिकतर अवध में हुआ था। इसलिए इस काल के काव्यों में अवधी का प्रयोग अधिक मिलता है।

### 3.3.1 **रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्तियॉ**

रीतिकाल में श्रृंगार प्रधान रचनाएँ लिखी गईं। श्रृंगार रस रसराज था जिसमें संयोग और वियोग का सुन्दर चित्रण हुआ है। दरबारी संस्कृति होने के कारण कवियों के लिए घोर श्रृंगारिक कविता लिखना बंधनकारक बन गया था। श्रृंगारी भावनाओं के कारण राधा–कृष्ण साधारण नायक–नायिका के रूप में चित्रित किए जाने लगे।''इस समय का प्रेम एकनिष्ठ न होकर वासनामय बन गया था। राजाओं को संतुष्ट करने के लिए नग्न श्रृंगार का चित्रण किया जाने लगा। कवि बिहारी, देव, मतिराम आदि के काव्यों में स्थूल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है। संयोग तथा वियोग पक्ष में विरह मिलन का वर्णन स्थल स्थल पर आया है।''[21]श्रृंगार के वियोग पक्ष में कवियों ने विरह की दस दशाओं का वर्णन किया है–स्मृति, अभिलाषा, उद्वेग, चिंता, प्रलाप, गुणकथन, उन्माद, जड़ता, व्याधि और मूर्च्छा।इस युग की कविताओं में मुख्यतः चमत्कार प्रदर्शन एवं रसिकता भरी पड़ी है। अपने आश्रयदाता का गुणगान गाना एंव सुन्दर नारियों का नख–शिख वर्णन उस समय के कविताओं का मुख्य प्रतिपाद्य विषय एवं लक्ष्य था। ''उक्ति चमत्कार के द्वारा पाठक और

श्रोता के मन को आकृष्ट कर लेना इस युग के कवियों का लक्ष्य और सफलता का मापदण्ड बन गया था।''[22]इस आलंकारिकता का एक और कारण अलंकार शास्त्र का हू–ब–हू कविता में प्रयोग करना है। कई कवियों ने अलंकार के लक्षण और उदाहरण भी रचे हैं। अलंकार योजना साधन से साध्य बन गया। परन्तु उसमें भी विविधता कम और रूढ़िबद्धता अधिक थी क्योंकि रीतिकालीन कवि संस्कृत के अलंकार शास्त्र के उपमानों को लेकर उनका ही प्रयोग करता रहा। इन्होंने उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग अधिक किया है। ''संभावनामूलक उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग इस काल के कवियों ने खूब किया है। इसका कारण यह है कि इसमें कल्पना की उड़ान और चमत्कार प्रदर्शन की काफी छूट रही है। चमत्कारमूलक अलंकारों में से श्लेष, यमक और अनुप्रास का अधिक प्रयोग हुआ है।''[23]

रीतिकालीन कवियों की रचनाओं में यदा–कदा भक्ति और नीति की छटा देख सकते हैं। परन्तु भक्ति और नीति के अंशों को पाकर उन कवियों को भक्त या नीति निष्णात कवि नहीं मान सकते हैं। यदि इनकी रचनाओं में भक्ति या नीति के अंश पाए जाते हैं तो वह भी श्रृंगारिकताका अंश ही होता है। इस काल की रचनाओं में श्रृंगारिकता अधिक है परन्तु इन्होंने कभी भी अपने पूर्ववर्ती युग के प्रमुख रचना स्त्रोत भक्ति की अवज्ञा नहीं की है। भक्ति प्रधान रचनाएं भी इस काल में प्राप्त होती हैं। ''भौतिक रस की उपासना करते हुए उसके विलास जर्जर मन में इतना नैतिक बल नहीं था कि भक्ति रस में अनास्था प्रकट करते या उसका सैद्धांतिक निषेध करते। यह जीवन की अतिशय रसिकता से घबराते भी थे और रीतिकालीन भक्ति एक ओर सामाजिक कवच और

दूसरी ओर मानसिक शरण–भूमि के रूप इनकी रक्षा करती थी।''[24]रीतिकालीन कवि मुक्तक शैली का प्रयोग अधिक करते थे। इनका मुख्य उद्देश्य चमत्कार प्रदर्शन था जिससे वह अपने आश्रयदाताओं की वाह–वाही लूट सके तथा अधिक से अधिक धन प्राप्त कर सके। इनके काव्यों में कवित्त, सवैया, दोहा, जैसे छन्दों का प्रयोग हुआ है जो चमत्कार प्रदर्शन, श्रृंगार रस, वीर रस आदि के सफलतापूर्वक प्रस्तुतीकरण में सक्षम हैं। ब्रज भाषा रस काल की प्रमुख भाषा है। रीतिकाल के मुक्तक कवियों को सजाना व संवारना और श्रृंगार रस के बेहतरीन अभिव्यक्ति को पाने के मुख्य उद्देश्य को लेकर अधिकतर कवि अपना काव्य ब्रजभाषा में रचते थे। इस काल में ब्रज भाषा एक मुख्य काव्य भाषा के तौर सर्वांगीण विकास पा रहा था, जिसमें अवधी, अरबी, फारसी, राजस्थानी, बुन्देलखण्डी आदि से कोमल एवं व्यंजक शब्द ब्रजभाषा के कोश में स्थान ग्रहण कर रहा था।''यह काल ब्रजभाषा की चरमोन्नति का काल है। इस समय ब्रज भाषा में विशेष निखार, माधुर्य और प्रांजलता का समावेश हुआ और भाषा में इतनी प्रौढ़ता आई कि भारतेन्दु काल तक कविता क्षेत्र में इनका एकमात्र आधिपत्य रहा।''[25]

रीतिकाल के कवि आचार्य कर्म और कवि कर्म दोनों को एकसाथ ले जाने वाले हैं। रीतिमुक्त कवियों को छोड़कर प्रायः सभी कवियों ने लक्षण ग्रन्थों का निर्माण किया है। इस काल में वीर रस प्रधान रचनाएँ भी मिलती हैं। रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति के स्वतंत्र रूप का चित्रण कभी नहीं किया। प्रकृति आलम्बन रूप में इन काव्यों में आता है। नायक और नायिका के मनोदशा के अनुरूप प्रकृति चित्रण होता है। उनके संयोग से प्रकृति उत्फुल्लित हो उठती है और उनके वियोग से वह

दुखदकारी बन जाती है। प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण षट्ऋतु वर्णन तथा बारहमासा वर्णन की पद्धति पर हुआ है।इस काल के कवियों ने नारी को केवल भोग विलास की वस्तु के रूप में दिखाया है। इन कवियों ने नारी के अंग–प्रत्यंग की शोभा, हाव–भाव और चेष्टाओं का वर्णन किया है। इनके लिए नारी के महत्व का एकमात्र कसौटी उसके सुन्दर होने में है। यहॉ तक कि रीति कवियों ने स्त्री–पुरुष के यौन संबंधों का भी वर्णन किया है। ''इस एकांगी दृष्टिकोण के कारण वह नारी जीवन के सामाजिक महत्व, उसके श्रद्धामय रूप और उसकी मातृशक्ति को देख नहीं सके। वह केवल तनद्युति का अनुरागी था और उसका वह अनुराग यहॉ तक बढ़ चुका था कि वह अपनी आराध्य देवी के भी शारीरिक लावण्य पर ही रीझता रहा है''[26]– 'तजि तरिथ हरि–राधिका तन दुति करू अनुराग।'रीति कवियों का व्यक्तित्व, आजीविका और भावाभिव्यक्ति आश्रयदाता की कृपा दृष्टि पर अवलम्बित है। इसलिए इन कवियों में एक दूसरे से श्रेष्ठ होने की होड़ थी। श्रृंगार रस प्रधान रचनाओं के अलावा इन कवियों ने ज्योतिष, सामुद्रिक शास्त्र, कामशास्त्र, राजनीति, पाकशास्त्र, संगीतशास्त्र आदि पुस्तकों की भी रचना की है। इस काल के कवि संस्कृत के शास्त्र ग्रन्थों पर अधिक रूचि रखते थे और उनकी रचनाएं इन्हीं पर आधारित होती थी। इस काल के प्रमुख रचनाकार हैं – केशवदास, पद्माकर, देव, बिहारी, मतिराम, भूषण आदि।इस प्रकार देखें तो रीतिकाल के कवियों ने जीवन और यौवन की रमणीय पक्ष को दिखाया है। उनके लिए जीवन एक उत्सव है। उसमें प्रेमी और प्रेमिका का सुन्दर मिलन है, विरह वेदना है, नायिका का

नख–शिख वर्णन है, भाषा का परिमार्जन, सौष्ठव और प्रौढ़ता है, उक्ति वैचित्र्य तथा चमत्कार प्रदर्शन है।

## 3.4.आधुनिक हिन्दी कविता

आधुनिक काल के प्रथम चरण को भारतेन्दु काल कहा जाता है। यह काल सन् 1850 से 1900 तक है। इस काल में मुख्यतः राष्ट्रीयता, प्रकृति चित्रण, श्रृंगारपरक, आदि काव्य रचना के विषय रहे हैं। इस काल की काव्य भाषा मुख्यतः ब्रज थी। यह वह समय था जब साहित्यिक रचनाओं में पश्चिमी विचारधारा का प्रभाव गहरे रूप से पड़ रहा था। अंग्रेज़ों के नवीन आर्थिक नीतियॉ, नवीन शिक्षा प्रणाली, संचार साधनों का विकास, प्रेस आदि ने भारतीय समाज में एक बड़ा परिवर्तन लाया। उसी प्रकार सामाजिक संस्थाएँ जैसे ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसॉफिकल सोसाइटी आदि ने समाज के विचारधारात्मक मण्डल में परिवर्तन की एक नयी लहर उठा दी। इसके साथ–साथ सन् 1857 की क्रांति तथा इंडियन नेशनल कॉग्रेस की स्थापना ने भारत के युवा मन में एक नई सोच का संचार किया। इस तरह के सामाजिक व राजनीतिक संस्थाओं ने भारतीय समाज तथा साहित्यिक क्षेत्र में गहरा असर छोड़ा जिसके फलस्वरूप एक नई राष्ट्रीयता की धारा चल पड़ी। इसका परिणाम यह हुआ कि संपूर्ण भारतवर्ष को एक अखण्ड देश की अवधारणा प्राप्त हुई। साहित्यिक क्षेत्र में एक साथ प्राचीन तथा नवीन साहित्यिक परंपराओं का अनुसरण हुआ है। यह राजभक्ति के साथ साथ देशभक्ति, अंग्रेज़ राज का गुणगान तथा उसका घोर विरोध जैसे अन्तर्विरोधी विचारधारा से युक्त काल था।

3.4.1 **भारतेन्दु युगीन काव्यः–** इस काल में कवि की अपेक्षा समाज सुधारक, प्रचारक और पत्रकार अधिक हैं। यह नवजागरण का युग था। अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार–प्रसार व्यापक रूप से हो रहा था। कुछ लेखक भारत के अतीत का गुणगान कर रहे थे, तो कुछ पुरानी श्रृंगार प्रधान रचना विधान का अनुसरण कर रहे थे और कुछ पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव एवं सामाजिक संस्थाओं के प्रवर्तन से उत्पन्न सामाजिक जागरण से प्रेरणा पाकर देश की राजनीतिक–आर्थिक दासता, बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध जैसे रूढ़िवादी सामाजिक प्रथाओं के विरुद्ध कविता के द्वारा आवाज़ उठा रहे थे। यह काल काव्य के क्षेत्र में ब्रज भाषा से खड़ी बोली में संक्रमण का काल है। ''हिन्दी की आधुनिक कविता की शुरूआत ब्रजभाषाको छोड़कर खड़ी बोली से होती है। वैसे ही भक्ति और श्रृंगार से उपराम होकर राष्ट्रीयता से। कविता में खड़ी बोली का व्यापक आरंभ श्रीधर पाठक से दिखता है। राष्ट्रीयता की तीव्र अनुभूति भारतेन्दु से ही उभरनेलगती है। अध्यात्मिकता से ऐहिकता, की ओर झुकाव आधुनिक हिन्दी कविता की पहली बड़ी विशेषता कही जा सकती है।''[27]

भारतेन्दु युग की मुख्य उपलब्धि यह है कि इसके पूर्व रीतिकाल में वैयक्तिक श्रृंगारमयी काव्य धारा पर बल रहा, इसके स्थान पर कविगण समाज और राष्ट्र को उद्‌बोधन देने वाली लोकमंगलकारी दृष्टि की ओर उन्मुख होने लगे। ''नवजागरण काल में कवियों का ध्यान देश, समाज और जनसामान्य की ओरगया। अतः उन्होंने सजग होकर काव्य के विषय और काव्य शिल्प दोनों में परिवर्तन करते हुए कविता को जनसाधारण के बीच पहुँचाने का प्रयास किया।''[28]इस काल के प्रमुख प्रवृत्तियॉ हैं – सामाजिक चेतना, भक्ति भावना, श्रृंगाकिरकता, प्रकृति चित्रण,

हास्य–व्यंग्य, रीति निरूपण, समस्यापूर्ति, राष्ट्रीय चेतना, अभिव्यंजना शैली, काव्यानुवाद, छन्द बद्ध काव्य सर्जना तथा ब्रजभाषा के परंपरागत प्रयोग से आगे बढ़कर खड़ी बोली का प्रयोग।

भारतेन्दु काल के काव्यों में समाज सुधारक एवं राष्ट्रीयता की भावना पहली बार प्रखर रूप से पाई गई। इसमें समाज एवं धर्म के रूढ़ियों के खिलाफ रचनाएँकी गईं। ''इस काल की कविता में 1857 की क्रांति का प्रभाव है। इसमें अंग्रेज़ों द्वारा देश की आर्थिक शोषण का विरोध हुआ है। इसमें धर्म की प्राचीन रूढ़ियों से मुक्त कर नया दिखाने का प्रयास हुआ है। इसने रीतिकालीन जड़ता से काव्य को मुक्त किया है।''[29]भारतेन्दु ने काव्य भाषा से पुराने शब्दों को हटाकर समयानुकूल नए शब्दों को स्वीकारा है। भारतेन्दु मण्डली के कवियों ने काव्य में अभिनव छन्द विधान तथा मुक्तक का प्रचलन किया है। आधुनिक काल हिन्दी काव्य का संक्रमणकाल है। इसमें सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन का यथार्थ अपनी पूरी विसंगतियों के साथ उभरा है और समाज के नए मूल्यों के निर्माण में गति दी है। ''आधुनिकता अपने साथ ऐसे विचार और चिंतन लाई है जिन्होंने मानव जीवन को मध्यकालीन रूढ़ियों, अंधविश्वासों और तज्जन्य विकृतियों से मुक्त कर व्यक्ति स्वातंत्र्य और समाज निर्माण के नये धरातल पर प्रतिष्ठित किया है।''[30]इस काल के प्रमुख कवि हैं – अंबिकादत्त व्यास, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण प्रेमघन, ठाकुर जगमोहन सिंह, बाबू रामकृष्ण वर्मा, लाला सीताराम, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, श्रीधर पाठक, जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण', वियोगी हरि, दुलारेलाल जी भार्गव।

भारतेन्दु काव्य के कवियों ने रीतिकाव्य के रूढ़िग्रस्त परंपराओं और संकीर्ण सामंति अभिरुचियों वाली काव्य परिपाटियों के दायरे से बाहर आकर जीवन के यथार्थ का चित्रण करने में सफल हुए हैं। यद्यपि काव्य मुख्यतः ब्रजभाषा में लिखी जा रही थी, फिर भी वह देश की उस वक्त की दशा को स्पष्ट रूप से दिखा रही थी। ''भारतेन्दु मण्डल के कवियों की मौलिकता यह है कि उन लोगों ने रीतिकाल के प्रति विद्रोह किया है। दरबारी काव्य परंपरा, नख–शिख वर्णन की प्रणाली, नायक–नायिका भेद, कविता को कुछेक खास विषयों तक सीमित रखने की दृष्टि, चमत्कार प्रियता, चित्रकारी और रूप विधान पर अधिक बल – इन सब से हिन्दी कविता को मुक्त किया है।''[31]पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली तथा ज्ञान विज्ञान प्रचार–प्रसार से विश्वबोध व आधुनिक विवेक का उदय हुआ इससे नई पीढ़ी के कवियों ने पुरानी पीढ़ी के जर्जर रूढ़ियों के विरुद्ध नई विचारधारा को स्वीकारा। इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियॉ हैं–

3.4.1.1.**देश–प्रेम** : अंग्रेज़ों के कुनीतियों के विरुद्ध इस काल में बहुत कविताएँ लिखी गईं। ''देश के विभिन्न जाति, धर्म एवं भाषा के महत्ता के बारे में साधारण जनता में जागरण पैदा करने तथा अंग्रेज़ी शिक्षा और संस्कृति से नष्ट हो रही भारतीयता पर इन कवियों ने गहरी चिंता प्रकट की है।''[32]

3.4.1.2.**भक्ति–भावना** : इस काल में मुख्य रूप से राधा–कृष्ण की भक्ति संबंधी रचनाएँ लिखी गईं।

3.4.1.3.**हास्य–व्यंग्य** : इन कवियों के काव्यों में हास्य शिष्ट और सोद्देश्य होते हैं। इनके मुकरियों में यह अधिकतर देखा जा सकता है।

3.4.1.4.**सामाजिक जागरण** : इन कवियों के काव्यों में स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, वर्ण भेद का त्याग आादि का पक्ष किया है। उसी प्रकार अनमेल विवाह, बाल विवाह आदि का विरोध हुआ है।

3.4.1.5.**प्रकृति चित्रण** : प्रकृति का सुंदर चित्रण इन कवियों ने किया है। इनकी कविताओं में प्रकृति का मानवी–रूप देखने को मिलता है।

3.4.1.6.**भाषा–प्रेम** : भारतेन्दु और उनके मण्डली के सभी कवियों ने अपनी कविताओं में भारतीय भाषाओं के प्रति संवेदनशील रहे हैं। अंग्रेज़ों के शिक्षा प्रणाली के विरुद्ध इन कवियों ने घोर विरोध किया है।

3.4.1.7.**जन काव्य** : इन कवियों ने साधारण से साधारण विषयों को लेकर रचनाएँ की हैं। इनकी भाषा भी सरल होती थी। यह अधिकतम जनसाधारण विषयक कविताएँ जैसे महामारी, आर्थिक विघटन, शोषण, सूखा आदि होती थीं।

इस काल के कुछ प्रमुख कवि और उनकी कविताएँ ये हैं –लाला भगवानदीन – 'वीर क्षत्राणी', 'वीर बालक', कामता प्रसाद गुरू– 'भौमासुर वध', 'अन्योक्ति शतक', गंगाप्रसाद शुक्ल'सनेही'– 'प्रेम पचीसी', 'कृषक क्रंदन', ठाकुर गोपालशरण सिंह– 'मानवी', 'संचिता', गोपालसिंह 'नेपाली'– 'उमंग', 'पंछी', जगन्नाथदास 'रत्नाकर'– 'समस्यापूर्ति', 'श्रृंगार लहरी' आदि।

3.4.2. **द्विवेदी युगीन काव्यः–** यह समय जागरण सुधार का काल माना जाता है। इस काल के दौरान संपूर्ण देश में जो स्वतंत्रता आन्दोलन की एक नई लहर दौड़ी उसी के साथ–साथ साहित्यिक क्षेत्र में भी राष्ट्रभक्ति

का नारा बुलन्द हुआ। इस काल की कविताओं में समाज सुधारा के साथ–साथ राष्ट्र प्रेम की भावना से ओत–प्रोत कविताएँ भी लिखी गई। इस युग के प्रवर्तक महावीर प्रसाद द्विवेदी हैं। यह एक बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। इन्होंने न सिर्फ तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप साहित्यिक रचनाएँ की बल्कि औरों को भी प्रोत्साहन देते रहे। भारतेन्दु काल में लिखे जा रहे ब्रज भाषा काव्यों से पृथक हिन्दी भाषा को अधिक महत्व देकर साहित्यिक क्षेत्र में हिन्दी खड़ी बोली का अधिक प्रयोग व उसके सुधार कार्य में जुटे रहे। ''हिन्दी भाषा के परिमार्जन एवं एकरूपता बनाने में सर्वाधिक अहम भूमिका आचार्य द्विवेदी की ही रही है। उन्होंने हिन्दी काव्य को परंपरा मुक्त किया, कवियों को समाजोत्थान की भावना से अवगत कराया तथा राष्ट्रीयता का शंख ध्वनित करने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया।''[33]

द्विवेदी युगीन कवियों का मुख्य स्वर राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का है। इन कवियों ने सामाजिक रूढ़ियों व धार्मिक आडम्बरों के प्रति आक्रोश एवं विद्रोह का स्वर अपनाया है। इनकी कविताओं में नवीन मानवतावादी दृष्टिकोण का दर्शन होता है। इन्होंने मुख्यतः खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठा दी। इनके समय काव्य के कई रूप सामने आए जैसे – महाकाव्य, खण्डकाव्य, लघुपद्यकाव्य, मुक्तक, प्रबंध मुक्तक आदि। राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग एवं प्रचार हुआ। काव्य भाषा पूरी तरह ब्रज से खड़ी बोली में परिवर्तित हुआ। भाषा एवं काव्य के आंतरिक घटन में परिवर्तन लाया गया। ''युग निर्माता द्विवेदी जी ने सदैव शुद्ध, व्याकरण सम्मत भाषा लिखने का कवियों से आग्रह किया। काव्य में

व्याप्त शैथिल्य को दूर कर उन्होंने नई अभिव्यंजना प्रणाली को जन्म दिया।''[34]

इस काल के कवियों ने ईश्वर के स्थान पर मानव को महाकाव्य के नायक के रूप में प्रस्तुत किया। राम, कृष्ण, सीता, राधा आदि पात्र ईश्वर की कोटि से नीचे साधारण मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किए गए। ऐसे पात्र जो विश्व–बंधुत्व एवं सबके हित के लिए हैं। मानव सेवा ही ईश्वर सेवा बन गई। मनुष्य में ईश्वर के दर्शन हुए। इसका उदाहरण गुप्त जी का वह काव्य पंक्तियॉ हैं –''भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,/नर को ईश्वरत्व प्राप्त कराने आया,/संदेश यहॉ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,/इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।''समकालीन सामाजिक समस्याएॅ जैसे – धार्मिक असहिष्णुता, कट्टरता, जाति–पांति विचार, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, सति प्रथा आदि का घोर विरोध इस समय के कवियों ने किया है। पुराने जर्जर रूढ़ियों और मान्यताओं का विरोध कर एक नई सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करने का प्रयास किया है। धर्म, जाति, वर्ण भेद के स्थान पर देश की एकता और अखण्डता को दिखाने तथा देश प्रेम की भावना को जगाने का प्रयास इन कवियों ने किया है। ''द्विवेदी युगीन काव्य में मानव सत्यता, सात्विक ओज, प्रवाह, जीनोष्मा तथा बल है। इसमें भारतीय राष्ट्र के जीर्णोद्धार तथा नव निर्माण के शिवसंकल्प की जीवंत प्रेरणाएॅ झलक रही हैं।''[35]वर्तमान सामाजिक एवं सांस्कृतिक भावना को बुलंद करने हेतु इन कवियों ने भारत के अतीत से बहुत प्रभाव ग्रहण किया है। इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियॉ हैं :–

3.4.2.1.**राष्ट्रीयता की भावना** : कवियों की चिन्ता स्वदेश प्रेम की रचनाएं करने में थी। इस काल में भारत के अतीत का गौरव गान खूब हुआ है। यह इस समय की मॉग थी क्योंकि देश की जनता परतंत्रता के खिलाफ जागरूक हो रही थी। जनता का मनोबल बढ़ाने तथा उनका आत्माभिमान बनाए रखने हेतु इस काल के कवियों ने भारत के अतीत को गौरवशाली इतिहास घोषित कर आम जनता में गर्व का एहसास जगाया है। इन कवियों ने देश की दुखपूर्ण अवस्था, विदेशी शासन द्वारा जनता का शोषण, धर्म के नाम परलोगों की आपसी लड़ाई आदि विषयों पर अपना विचार प्रकट किया है। उन्होंने अपनी कविताओं के जरिए देश की एकता पर बल दिया।

3.4.2.2.**मानवतावादी दृष्टि का उन्मेष** : इन कवियों ने इंसान के उदान्त भावों को जैसे करुणा, स्नेह, दया, परोपकार, भाईचारा आदि पर अपनी कविताओं द्वारा बल दिया है। ''एक ओर श्रीधर पाठक ने विधवाओं की दीन दशा के चित्र अंकित किए तो दूसरी ओर हरिऔध ने अछूतों के प्रति करुणा जगाई। स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, दहेज आदि विषयों पर तो कविताएं लिखी ही गईं, नारी का उदात्त रूप–उसका त्याग, बलिदान, सहिष्णुता, निष्ठा और मानव प्रेम–प्रस्तुत कर भारतीय नारी के मन में आत्मविश्वास और आत्मगौरव की भावना जगाई।''[36]

3.4.2.3.**स्वाधीनता हेतु संघर्ष की भावना** : द्विवेदी युगीन कवियों में विद्रोह की भावना जागृत हो रही थी। उनका एकमात्र स्वप्न था, स्वाधीनता। ''पराधीनता और अंग्रेज़ों के दमन के विरुद्ध वे सर्वस्व समर्पण करने को तैयार थे।''[37]मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन

जैसे कवियों ने अपनी कविताओं के ज़रिए स्वाधीनता संग्राम में अपना अदायगी निभा रहे थे।

3.4.2.4.**बौद्धिकता का प्रबल प्रदर्शन** : भारतुन्दु युग की कविताओं में जो प्रवृत्तियॉ थीं जैसे अन्ध–देशभक्ति, अंग्रेज़ों के सरकार का गुणगान, पाश्चात्य रचनाओं का अनुकरण व उसका अनुवाद आदि से अलग द्विवेदी युग के कवियों ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया है। राम–सीता, राधा–कृष्ण जैसे अध्यात्म चरित्रों को इन कवियों ने साधारण स्त्री–पुरूष के रूप में दिखाया है।

3.4.2.5.**प्रकृति चित्रण** : इस युग के कवियों ने अपने काव्यों में प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है। प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण कवियों ने किया है।

3.4.2.6.**हास्य–व्यंग्य की परंपरा** : इस युग के कवियों ने पश्चात्य अन्धानुकरण, धर्माडम्बर, जाति प्रथा, सामाजिक कुरीतियॉ, धार्मिक रूढ़ियॉ आदि की निरर्थकता को हास्य तथा व्यंग्य–परक रचनाओं द्वारा व्यक्त किया है।

3.4.2.7.**छंद–वैविध्य** : द्विवेदी युगीन रचनाएँ हिन्दी भाषा के सुधार और परिष्करण के दौर से भी गुज़र रहा था। इसलिए इसमें कई प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। दोहा, कवित्त, सवैया, मंदाक्रांता, शिखरिणी, शार्दूलाक्रीड़ित आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। साथ में मुक्तक छन्द का प्रयोग भी होता रहा।

3.4.2.8.**भक्ति–भावना** : द्विवेदी युग की कविताओं में राम और कृष्ण की भक्ति संबंधी रचनाएँ भी आती हैं।

3.4.2.9.**समाजोत्थान की भावना** : द्विवेदी युगीन कवियों ने अपनी कविताओं के संदर्भ और उनके पात्रों के ज़रिए एक समाज की ओर ज़ोर दिया है। हरिऔध के 'प्रियप्रवास', गुप्त जी का 'साकेत' आदि इसके उदाहरण हैं।

3.4.2.10.**श्रृंगारी–भावना** : इस काल के कवियों ने श्रृंगार का कामोत्तेजक भाव को न लेकर सात्विक भाव को ग्रहण किया है। श्रृंगार के वर्णन के दौरान संयोग–वियोग, आकांक्षा, उल्लास, उत्साह, हाव–भाव अभिलाषा आदि का चित्रण हुआ है परन्तु कहीं भी अश्लीलता के स्तर तक नहीं गया है।

3.4.2.11.**नारी चित्रण** : द्विवेदी युग में नारी केवल संभोगकी वस्तु नहीं है बल्कि वह विचारशील, कर्तव्यनिष्ठ, संयमी, पवित्र एवं आदर्श नारी है। इस युग के कवियों ने नारी को केवल कामरूपा, विलासिनी, कामिनी आदि रूपों में नहीं बल्कि मॉ, देवी, बहिन, सहचरी आदि रूपों में भी दिखाया है।इस काल के कुछ प्रमुख कवि एवं उनकी रचनाएँ हैं –मोहनलाल मेहतो 'वियोगी' – 'एक तारा', 'निर्माल्य', 'कल्पना', श्री हरिकृष्ण प्रेमी – 'ऑखों में', 'जादूगरनी', 'अनन्त के पद पर', उदयभानु हंस – 'संत सिपाही', 'धड़कन', 'सरगम', अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'– 'प्रियप्रवास', 'वैदेही वनवास', 'काव्योपवन', मैथिलीशरण गुप्त – 'भारतभारती', स्वदेश संगीत', 'पंचवटी', 'साकेत', माखनलाल चतुर्वेदी– 'हिम किरीटिनी', 'हिम तरंगिनी', 'युग चरण', वियोगी हरि – 'प्रेमांजलि', 'वीणा', 'प्रेम पथिक'।

द्विवेदी युगीन कवियों पर रामदरश मिश्र जी के विचार उल्लेखनीय हैं कि – ''द्विवेदी युग के कवियों ने जो उपेक्षित पौराणिक और ऐतिहासिक पात्रों को या उनके उपेक्षित व्यक्तियों को एक सीमा में महत्व और आधुनिक स्पर्श देने का प्रयास किया है, वह प्रकारांतर से व्यक्ति की चेतना को मुक्त करने की दिशा में एक स्तुत्य आरंभ था, किन्तु उनका काव्य प्रयास तो समाज और राष्ट्र को गढ़ने या पुराने नैतिक मूल्यों को आधुनिक संदर्भों में पुनःनिर्मित करने का था।''[38]

3.4.3. **छायावादः**सन् 1918 में इस काव्य प्रवृत्ति का आरम्भ होता है। काव्य के इस प्रवृत्ति में यूरोप के रोमांटिसिसम और रवीन्द्रनाथ टैगोर के रहस्यात्मक काव्यों का प्रभाव पड़ा है। यहॉ काव्य की मनोभूमि मुख्यतः प्रकृति के विभिन्न भावों की अभिव्यंजना करने में तल्लीन है। छायावाद ने पुरातन सामाजिक रूढ़ियों, पवित्रतावादी नैतिक बंधनों एवं इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध विद्रोह किया है। छायावाद के प्रमुख कवि हैं – जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा। छायावादी कविताओं में प्रकृति क्रियाशील है और गतिशील भी।''छायावाद मुक्त व्यक्ति चेतना के महत्व की स्वीकृति का काव्य है। उसने सच्चे अर्थों में मध्यकालीन सामंती समाज और सभ्यता के रूढ़, परिपाटिबद्ध संस्कारों, मूल्यों और बोधों के प्रति क्रांति की और एक सर्वथा नवीन अनुभूतिजन्य स्वच्छन्द भावसत्य और सौन्दर्यबोध को वाणी दी।''[39]

छायावाद में व्यक्ति और समाज की नियति का अपेक्षाकृत अधिक मनोवैज्ञानिक और संश्लिष्ट स्तर पर आंकलन हुआ है। छायावाद में कल्पना मुख्य रूप काव्य विधायक तत्व के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान, उपचार वक्रता व स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ हैं। छायावाद मुख्यतः प्रेम सौंदर्य का काव्य है। इसमें नारी, प्रकृति, जीवन और संसार के प्रति सर्वथा नया दृष्टिकोण अपनाया गया है। महादेवी वर्मा के अनुसार – ''छायावाद का दर्शन सर्वात्मवाद का दर्शन है।'' ''छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहॉ उसका संबंध काव्यवस्तु से होता है अर्थात जहॉ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। दूसर है –अध्यात्मिक या ईश्वर प्रेमसंबंधी कविताओं के अतिरिक्त और सब प्रकार की कविताओं के लिए भी प्रतीक शैली का प्रयोग। प्रतीक में भी अप्रस्तुत प्रतीक का प्रयोग अर्थात् प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन।''[40] छायावाद के संबंध में अन्य आलोचकों का मत इस प्रकार है :–

### 3.4.3.1**छायावादी काव्य की प्रवृत्तियॉ**

3.4.3.1.1. **सर्वात्मवादी भावना :** प्रकृति आत्मा की ही छाया है। जगत के सभी रूपविराट सत्ता के विविध रूपहैं।

3.4.3.1.2.**अध्यात्मिक चेतना :** छायावादी काव्यधारा का एक अध्यात्म पक्ष है, परन्तु उसकी मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है। उसे हम बीसवीं शताब्दी की वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति की प्रतिक्रिया भी कह सकते हैं। ''मानव और प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में अध्यात्मिक छाया का भान छायावाद है।''[41]

3.4.3.1.3. **जनतांत्रिक चेतना :** छायावादी काव्य में नए जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा और स्वतंत्र प्रयोग की प्रवृत्ति है। आत्मपरक भावसाधना में मानवता के लिए सहानुभूति है। शताब्दियों से पीड़ित शोषित नर–नारी के दुख–दर्द इन्हें प्रभावित किया है। अतः इसमें मानव प्रेम है।

3.4.3.1.4. **वैयक्तिक चेतना :** इसमें वैयक्तिक अनुभूतियों का प्रदर्शन हुआ है। व्यष्टि का समष्टि में और समष्टि का व्यष्टि में आरोप इसकी विशेषता है। इसमें 'मैं' शैली का प्रयोग हुआ है। कवि अपने निजी अनुभूतियों की रागात्मक अभिव्यंजना करता है। कवि प्राकृतिक जीवन में भी अपनी निजता, स्वतंत्रता और आत्मभाव देखता है। महादेवी वर्मा का मत है – ''इस व्यक्ति प्रधान युग में व्यक्तिगत सुख दुख अपनी अभिव्यक्ति के लिए आकुल थे, अतः छायायुग का काव्य स्वानुभूति होने के कारण वैयक्तिक उल्लास – विषाद का सफल माध्यम बन सका।''''वन गुहा कुंज मरू अंचल में हूँ खोज रहा अपना विकास''– जयशंकर प्रसाद

3.4.3.1.5. **मानव और प्रकृति का सह–संबंध :** छायावादी कवि प्रकृति के हर चराचर पर मानवी भावों और अभिव्यक्ति का आरोप किया है। यह कवि प्रकृति में चेतना का अनुभव पाते हैं। इन्हें प्रकृति के मूक चित्रोंमें मानवोचित हृदय की प्रतिष्ठा की है। इन्होंने प्रकृति का मानवीकरण किया है।

3.4.3.1.6. **नारी सौन्दर्य :** रीतिकाल से भिन्न छायावाद में नारी के मांसल चित्र के स्थान पर देवी, मॉ आदि सात्विक रूपों का चित्रण हुआ है। इन्होंने रूप का सौन्दर्य नहीं आत्मा का सौन्दर्य देखा है। इन कवियों ने नारी को पुरूष की सहचरी और सम्बल के रूप में चित्रित किया है।

छायाावादी कविताओं में नारी प्रेम और सौन्दर्य की चेतना बनकर उभर आई है। उसे प्रेरणा स्रोत के रूप में दर्शाया गया है। ''नारी सौन्दर्य चित्रण के मूल में – स्वातंत्र्य प्रेम, स्थूलता की परिसमाप्ति, प्रेम के सूक्ष्मतर नवीन रूप, प्रत्यक्ष और परोक्ष में प्रेम की प्रकृति में परिवर्तन, जीवन में सरसता का संचार आदि तथ्यों का समावेश पाया गया है।''[42]

3.4.3.1.7. **प्रकृति–प्रेम :** दार्शनिक अनुभूति के अनुरूप काव्यवस्तु का चयन करने में छायावादी कवियों ने प्रकृति के अपार क्षेत्र से यथेष्ट सामग्री ग्रहण की है। इन्होंने प्रकृति के बाह्य एवं आंतरिक दोनों रूपों का चित्रण किया है।

''प्रकृति उद्दीपन न रहकर आलम्बन के रूप में उपस्थित हुई है। कवियों ने उसके भीतर चेतना की अन्तःसत्ता का अनुसंधान कर उसके साथ एक नवीन रागात्मक संबंध स्थापित किया है।''[43]प्रकृति का चित्रण बिम्ब और मिथक के रूप में अधिक हुआ है। वे प्रकृति प्रेम के मूल में व्यक्तिगत स्वच्छंदता की आकांक्षा तथा व्यक्तिगत स्वाधीनता का प्रतिफल मानते हैं।

3.4.3.1.8. **प्रेम और सौन्दर्य चेतना :** छायावादी काव्यों में मानवीय प्रकृति के मूल मनोभावों को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से दर्शाया है। उसमें मनुष्य के क्रियात्मक और भावात्मक विकास का सामंजस्य प्राप्त होता है। ''छायावाद का मुख्य संबंध मानवीय जीवन की अनुभूति से है। मानव जीवन की इकाईयों तथा प्रकृति के भीतर जो अध्यात्म तत्व की झलक देखते हैं, उन्हें व्यष्टि सौन्दर्यबोध के ज्ञापक या छायावादी कहते हैं।''[44] प्रेम का आदर्श रूप छायावादी कवियों ने प्रस्तुत किया है। अतः प्रेम का

इस उदात्तीकरण का आदर्शीकरण के कारण छायावाद में व्यक्तिगत प्रेम विश्वप्रेम में और मानवीय प्रेम प्रकृति प्रेम में बदल गया। प्रिय की छवि, लौकिक हो या अलौकिक, विश्व प्रकृति के भीतर प्रतिबिम्बित होता है।

''छायावादी कवियों का प्रेम केवल दाम्पत्य संबंध और प्रकृति के प्रति रागात्मक संबंध तक ही सीमित नहीं रहा, उसका प्रसार अपने देश, जाति और संस्कृति, विश्वमानव तक की विस्तृत भूमियों तक हुआ।''[45]

3.4.3.1.9. **कल्पना की प्रचुरता :** छायावादी कवि सत्यान्वेषी अन्तर्दृष्टि वाले कवि थे। इसलिए इनकी कल्पना अतिशय कल्पना की सीमा तक जाती है। इसका प्रमुख कारण इनके अज्ञात के प्रति जिज्ञासा, परमात्मा से मिलन की लालसा, तथा प्रकृति के प्रति विस्मय और कुतूहल की भावना है।

3.4.3.1.10. **काव्य–संवेदना :** प्रेम की अभिव्यंजना में भोग की अपेक्षा त्याग और बलिदान है। संयोग की अपेक्षा वियोग का चित्रण है। छायावादी कवियों के काव्य का संचरण स्थूल से सूक्ष्म की ओर, दृश्य से भाव की ओर तथा गोचर से अगोचर की ओर है।

3.4.3.1.11. **विद्रोह की भावना :** इन्होंने सामाजिक रूढ़ियों और सामाजिक अव्यवस्था के प्रति विद्रोह किया है। इन्होंने परंपरागत काव्य विषयों और रूढ़ियों के विरूद्ध विद्रोह किया है। छायावादी कवियों ने सामाजिक बंधनों, मर्यादाओं और वर्जनाओं की भी अवहेलना की है।

3.4.3.1.12.**शिल्प पक्ष :** छायावादी कवियों ने नवीन छन्दों का प्रयोग किया है। इन्होंने लक्षणा और व्यंजना शक्तियों से समन्वित नवीन भाषा और

प्रतीक और संकेत पद्धति वाली अभिव्यंजना प्रणाली का सहारा लिया है। इन्होंने वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति की है। इन्होंने अधिकतर अर्थालंकारों का प्रयोग किया है। अलंकारों की योजना अधिकतर गुण साम्य या भाव साम्य के आधार पर हुई है, रूप साम्य के आधार पर नहीं। सादृश्यमूलक और विरोधमूलक अलंकार का प्रयोग भी हुआ है। सादृश्यमूलक अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, रूपकातिशयोक्ति, अन्योक्ति, दृष्टान्त का प्रयोग हुआ है तथा विरोधमूलक में विरोधाभास। ''छायावादी कवियों ने अपने अनुभूतियोंके अनुरूप रूप निधि का निर्माण करते समय 'रूप' की संगति और सार्थकता के साथ–साथ उसके अतिरिक्त संकेत पर भी ध्यान रखा है। इसलिए छायावाद की रूप योजना में एक ओर जहॉ सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों के व्यंजक चित्र मिलते हैं, वहॉ दूसरी ओर प्रतीक योजना भी काफी मिलती हैं।''[46]

छायावादी कविताओं का पद विन्यास श्रुतिमाधुर्य वाले शब्दों से युक्त हैं। इन्होंने भावों के अनुकूल छन्दों का प्रयोग किया है। इनकी कविताओं में पदलालित्य, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, संगीतात्मकता, चित्रात्मकता व विषयानुरूप शब्दावली का चयन मिलता है। इन्होंने सांकेतिक अभिरुचि के लिए लाक्षणिक भाषा का प्रयोग किया है। इनकी कविताओं में गीत–प्रगीतों की रचना मुक्त रूप में हुआ है। इन्होंने विशेषण विपर्यय का प्रयोग भी किया है। इनकी कविताओं में मुक्तक छन्द का प्रयोग हुआ है।

छायावाद के प्रमुख कवि और उनकी कविताएं हैं – जयशंकर प्रसाद–'कामायनी', 'लहर', 'झरना', 'ऑसू',सूर्यकांत त्रिपाठी निराला–'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'तुलसीदास',सुमित्रानंदन पंत–'उच्छ्वास', 'वीणा', 'ग्रन्थि', 'पल्लव', 'गुंजन', 'ज्योत्सना',महादेवी वर्मा–'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सान्ध्यगीत', 'यामा', 'दीपशिखा',रामकुमार वर्मा–'अंजलि', 'अभिशाप', 'रूप राशि', 'चित्ररेखा',जानकीवल्लभ शास्त्री–'रूप अरूप', 'तीर तरंग', 'शिप्रा', 'मेघगीत'।

सन् 1936 में छायावाद का अन्त माना जाता है। इसके पश्चात् राष्ट्रीय चेतना युक्त कविताएँ रची गईं जिसका प्रमुख विषय देशभक्ति था। इसके साथ–साथ हालावाद नामक काव्यधारा भी चल रही थी जिसके प्रमुख कवि हरिवंशराय बच्चन थे। इस काल के प्रमुख कवि और कविताएँ हैं – पं माखनलाल चतुर्वेदी–'त्रिधारा', सियारामशरण गुप्त–'मौर्यविजय', 'दूर्वादल', 'विषाद', 'आर्द्रा', 'पाथेय', 'मृण्मयी', बालकृष्ण शर्मा नवीन–'कुंकुम', सुभद्राकुमारी चौहान–'मुकुल', हरिवंशराय बच्चन– 'तेरा हार', 'एकांत संगीत', 'मधुशाला', 'मधुकलश', 'मधुबाला', 'निशानिमंत्रण', रामधारीसिंह दिनकर–'प्रणभंग', 'रेणुका', 'हुंकार', ठाकुर गुरुभक्त सिंह–'नूरजहॉ', 'कुसुमकुंज', 'वंशध्वनि', पं उदयशंकर भट्ट–'तक्षशिला', 'मानसी', 'विसर्जन'।

**3.4.4.प्रगतिवाद :** रूसी क्रांति के बाद साम्यवाद की प्रतिष्ठा, भगत सिंह की फॉसी, 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना आदि ऐतिहासिक घटनाओं ने हिन्दी काव्य क्षेत्र में परिवर्तन की एक नई लहर उत्पन्न की। छायावादी कविता उस समय के सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्ति देने में

अक्षम थी। अंग्रेज़ों की शोषण प्रक्रिया, देश की साधारण जनता खासकर मज़दूरों और किसानों की दारुण अवस्था, राष्ट्रीय आन्दोलन, आम आदमी का संघर्ष और उसमें उभर रहे क्रांति की भावना, इन सभी का चित्रण छायावादी कविता नहीं कर पा रही थी। वह ऐसी परिस्थिति में भी कल्पना लोक में विचरण कर रहा था। इसके फलस्वरूप छायावादी काव्य परंपरा के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में प्रगतिवादी काव्य परंपरा का जन्म होता है।''प्रगतिवाद केवल सामाजिक यथार्थ की विचारधारा के रूप में ही नहीं आया, उसमें स्वच्छन्दतावादी और अध्यात्मिक छायावादी कविता की भाषा, छन्द विधान, और अभिव्यंजना पद्धति के विरुद्ध एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया का भाव भी वर्तमान था।''[47] प्रगतिवादी कविताओं में संपूर्ण मानव जाति को संबोधन किया जाता है। इसमें यथार्थवादी एवं मानवतावादी स्वर है। इसकी भाषा सीधी और सपाट है तथा सामाजिक यथार्थ का चित्रण उसका मुख्य घटक है। प्रगतिवादी कविताओं के मूल तत्व–द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, मार्क्सवाद और राष्ट्रीय भावना है। ''प्रगतिवाद की मूल स्थापनाओं में सामाजिक यथार्थवादिता, सामयिकता एवं ऐतिहासिकता पर विशेष बल है जो मार्क्सवादी चिंतन का द्योतन करता है।''[48]

प्रगतिवादी काव्य में विदेशी लेखक व आलोचक जैसे मक्सिम गोर्की, लूसुन, मॉयकॉव्स्की आदि का प्रभाव है। प्रगतिवादी कविताओं में कृषिजीवि देहाती अंचलों के राग–रंग, श्रम और शोषण का चित्रण हुआ है। प्रगतिवादी कवियों ने तत्कालीन जीवन के यथार्थ में निहित विडम्बना को व्यंग्यात्मकता प्रदान किया है। इसमें वर्ग संघर्ष का चित्रण हुआ है। इन कविताओं में एंगेल्स–लेनिन द्वारा प्रतिपादित ऐतिहासिक एवं

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्तों का गहरा प्रभाव पड़ा है। इन कविताओं ने यथार्थ के भीतर निहित सकारात्मक और विकासशील तत्वों की पहचान की है। प्रगतिवादी काव्य परंपरा के प्रमुख कवि हैं– केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, नागार्जुन, रांघेय राघव, शिवमंगल सिंह 'सुमन', त्रिलोचन, मुक्तिबोध, भारतभूषण अग्रवाल, भवानीप्रसाद मिश्र, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'।

यह परिवर्तनशील में आस्था एवं विश्वास रखने वाली कविताएं हैं। इसका रुख विकासोन्मुख है। यह मानवीय शक्ति को सर्वोच्च वरीयता देता है। इन कवियों ने जनसाधारण की भाषा को अपनी कविता सर्जना के लिए अपनाया है। प्रगतिवादी कविताओं का मूल उद्देश्य हैं–शोषित एवं पीड़ित के प्रति संवेदनशील होना, रूढ़ियों के प्रति विद्रोही स्वर अपनाना, नारी मुक्ति की कामना, समसामायिक समस्याओं के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना, वर्ग संघर्ष के प्रति आग्रह, पूँजीपति व्यवस्था के प्रति रोष एवं आक्रोश पैदा करना, श्रमजीवी को क्रांति के लिए उत्साहित एवं प्रोत्साहित करना, समाजोत्थान की भावना, समाज में साम्यस्थापना, धन–धरती बॉटने पर आग्रह, फांसीवाद का विरोध, धर्म का विरोध, समाज में आर्थिक संतुलन लाने की ललक आदि।

प्रगतिवाद के संबंध में श्यामचन्द्र कपूर का मत है – ''आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रगतिवादी कविता का जन्म छायावादी कविता की अतिशय अलंकृत, कल्पना प्रधान, अध्यात्ममूल एवं रहस्यवादी प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया के रूप में है।''[49]प्रगति के संबंध में मार्क्सवादी धारणा ही मुख्यतः हिन्दी की प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि है। मार्क्सवाद

को राजनीति और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में समाजवाद और साम्यवाद, दर्शन के क्षेत्र में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और समाजशास्त्र तथा इतिहास के क्षेत्र में ऐतिहासिक वस्तुवाद कहा जाता है। इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि प्रगतिवाद–''वह काव्यधारा है जिसने भारतीय समाज की आर्थिक–धार्मिक, राजनीतिक परिस्थितियों से रस ग्रहण कर, मार्क्सवादी विचारधारा का सम्बल प्राप्त कर, जिस मुक्त ढंग से अतिशय वैयक्तिकता से मुख मोड़ यथार्थ चित्रण किया वह 'प्रगतिवाद' के नाम से जाना जाता है।''[50]

प्रगतिवादी कवि साहित्य में कला को मात्र अभिव्यक्ति का साधन मात्र मानता है। यह व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व देता है। यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाता है। अर्थ पर बल एवं उसके सामाजिक विभाजन पर ज़ोर देता है। इसका आधार भौतिकवाद है, इसका ईश्वर, आत्मा आदि से कोई संबंध नहीं है। पूँजीवादी साम्राज्यवाद का अन्त कर समाजवाद की स्थापना उसका एकमात्र लक्ष्य है। यह पूंजीवादी तत्वों द्वारा निर्मित समस्त नैतिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक परंपराओं को ध्वस्त करना चाहता है। यह जीवन के केन्द्र में मानव को प्रतिष्ठित करता है।यह जनता में राजनीतिक चेतना का विकास कर, नये साम्यवादी समाज के स्वरूप, उद्देश्य और अनिवार्यता के प्रति जागरूक कराना चाहता है। जनसाधारण की मानसिकता को विकसित करना तथा वर्गहीन, शोषणहीन समाज की संरचना के लिए जनवादी आंदोलनों और वर्ग–संघर्ष के लिए जनता को उत्प्रेरित करना इसका उद्देश्य है।

### 3.4.4.1 **प्रगतिवादी काव्य की प्रवृत्तियॉ**

3.4.4.1.1. **सामाजिक यथार्थवादी दृष्टि :** प्रगतिवादी कवियों ने किसानों और मज़दूरों के जीवन संघर्ष को बड़े नज़दीक से देखा है और उसकी अभिव्यक्ति की है।''घुन खाए शहतीरों पर की, बारह खड़ी विधाता बॉचे,/फटी भीत है, छत चूती है, आले पर विसतुइया नाचे,/बरसा कर बेबस बच्चों पर, मिनट–मिनट में पॉच तमाचे,/इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम के सॉचे।''[51]–नागार्जुन

.3.4.4.1.2. **वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति असंतोष :** प्रगतिशील कवियों ने सामाजिक व्यवस्था के प्रति असंतोष को व्यंग्य एवं रोष के रूप में अभिव्यक्ति दी है। प्रतिक्रियाहीनता, धर्मान्धता, रूढ़ परंपराओं के विरुद्ध आवाज़ उठाकर इन कवियों ने आम जनता को विशेषकर देहाती जनता को शोषण के विरुद्ध खड़ा होने का आह्वान किया है।''हे ग्राम देवता, यथा नाम/शिक्षक हो तुम, मैं शिष्य, तुम्हें सविनय प्रणाम।/विजया, महुआ, ताड़ी, गांजा पी सुबह–शाम,/तुम समाधिस्थ नित रहो, तुम्हें जग से न काम।''[52]– पंत

इन कवियों ने समाज में व्याप्त रंग भेद, वर्ग भेद, जन्म भेद जैसे अलगाववादी व्यवस्था को कोसते हुए कहा है–''जीवन भर श्रम करता कोई,/नहीं पेट भर खा पाता,/और आलसी वर्ग मज़े में,/अधिकारों का निर्माता।''[53]– केदारनाथअग्रवाल

3.4.4.1.3. **शोषक–शोषित वर्ग विभाजन :** असमानता अर्थव्यवस्था का परिणाम है। धन कुछ हाथों में इकट्ठा होना, किसानों और मज़दूरों को उचित परिश्रम न मिलना। पूँजीपति द्वारा उत्पादन के साधनों पर

अधिकार जमाना। इन सब के विरुद्ध कवियों ने अपनी आवाज़ उठाई है।''यह राज काज जो सधा हुआ है, उन भूखे कंगालों पर,/इन साम्राज्यों की नींव पड़ी है, तिल–तिल मिटने वालों पर।''[54]– भगवतीचरण वर्मा

3.4.4.1.4. **शोषित जनता की करुण दशा का चित्रण :** कृषकों व मज़दूरों का कठिन एंव श्रमरत जीवन का चित्रण इन कवियों ने किया है। रूढ़ सामाजिक परंपरा का चित्रण करते हुए शोषित वर्ग को उनके अधिकर के प्रति सजग करना, उन्हें शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाने की मांग इन कवियों ने की है।

3.4.4.1.5. **राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम की भावना :** प्रगतिवादी काव्यों में न सिर्फ शोषक–शोषित के वर्ग संघर्ष का चित्रण हुआ है बल्कि उसमें राष्ट्रीयता एवं विश्व मानवता का भाव भी देखने को मिलता है। गांधी जी की हत्या पर क्षुब्ध नागार्जुन कहते हैं – ''जिस बर्बर ने/कल तुम्हारा खून किया/वह नहीं मराठा हिन्दू है/वह प्रहरी है स्थिर स्वार्थों का/वह मानवता का महाशत्रु/हम समझ गए/जो कहते हैं उसको पागल/वह नहीं चाहते परम क्षुब्ध जनता घर से बाहर निकले।''[55]

3.4.4.1.6.**स्वस्थ प्रेमाभिव्यक्ति के दर्शन :** इन कविताओं में स्वस्थ सामाजिक – पारिवारिक प्रेम व्यक्त हुआ है। जहॉ स्वच्छन्द प्रेम का चित्रण होना है वहॉ भी संयमी एवं स्वस्थ मनोवृत्ति का परिचय दिया है। इनका प्रेम सामाजिकता है।''कभी कभी यों हो जाता है/गीत कहीं कोई गाता है,/गूॅज किसी उर में उठती है/तुमने वही धरा उमगा दी।''[56]– त्रिलोचन

3.4.4.1.7. **नवजागरण एवं विद्रोह की भावना :** शोषक के विरुद्ध विद्रोह का आह्वान इन कवियों ने किया है। वर्तमान आर्थिक व्यवस्था को ध्वस्त कर, एक नयी व्यवस्था को लाने का आह्वान किया है। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की कविता 'विप्लव गायन' में वह कहते हैं –''नियम और उपनियमों के ये बंधन टूक टूक हो जाए,/विश्वम्भर पोषक वीणा के सब तार–तार मूक हो जाएं,/शांति दण्ड टूटे उस महारुद्र का सिंहासन हिल थर्राए,/उसकी पोषक श्वासोच्छ्वास जग के प्रांगण में घहराए।''[57]

3.4.4.1.8. **वर्गहीन समाज की स्थापना के पक्षधर :** प्रगतिवादी कवि धर्म, जाति, वर्ण, वर्ग आदि बंधनों से मानव को मुक्त कर समाज में समानता लाना चाहिता है। अमीर–गरीब की गहरी खाई को पाटना चाहता है।

3.4.4.1.9. **नारी के प्रति नया दृष्टिकोण :** इन कवियों ने नारी शक्ति और महत्ता का वर्णन किया है। उन्होंने युग युग से शोषित एवं दमित नारी को उत्थान का संदेश दिया है। नारी के विविध रूपों का चित्रण किया है। इन कवियों ने उसके कर्मठ व संघर्षमय जीवन में सौन्दर्य का दर्शन किया है।

3.4.4.1.10. **मानव की शक्ति में विश्वास :** इन कवियों को ईश्वर से अधिक मानव की शक्ति पर विश्वास है। मानव अपनी शक्ति और साहस के बल पर व श्रम से कुछ भी हासिल कर सकता है।

3.4.4.1.11. **धर्म, भाग्य एवं ईश्वर के प्रति अनास्था :** प्रगतिवादी कवियों ने धर्म–भाग्य–ईश्वर को पूंजीपतियों द्वारा अपनाए जाने वाले हथकण्डों में सहयोगी माना है।

3.4.4.1.12. **सोवियत रूस और साम्यवादी शासन व्यवस्था का समर्थन :** इन कवियों ने रूस और उसकी शासन व्यवस्था का गुणगान किया है। यह कवि रूस और चीन की क्रांति की सफलता से प्रभावित हैं। ''साम्यवादी चेतना, वर्ग संघर्ष, वर्ग चेतना से पूर्ण रचनाओं में लेखक कलाकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय घटना–चक्रों का प्रभाव तथा उनकी जागरूक दृष्टि का परिचय मिलता है।''[58]

3.4.4.1.13. **अनाचार, भ्रष्टाचार के विरोध में विद्रोह व शक्ति प्रयोग का समर्थन :** इन कवियों ने शोषक वर्ग को समाप्त करने के लिए हिंसा व बल के प्रयोग को सही बताया है। पूँजीपतियों, फांसीवादी ताकतों से अधिकार छीनने का आग्रह किया है। ''पूँजीवाद और सामंतवाद पर जागरूक तथा मार्क्सवादी चेतना से लैसकवियों की रचनाओं में गहरा व्यंग्य और प्रहार होने लगा था। अतः वर्ग चेतना के कारण शोषक–शोषित की नीति–रीति का खुलकर विरोध और पर्दाफाश करना इन रचनाओं का मुख्य उद्देश्य था।''[59]

3.4.4.1.14.**भाषा एवं शिल्प :** इनकी भाषा में नवीनता है। यह कला समाज के लिए का समर्थक हैं। जीवन के सुख–दुख, आशा–निराशा एवं आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का रुख व्यक्ति से समाज और समाज से विश्व की ओर है। प्रगतिवादी काव्य में अलंकारों की कमी को प्रतीकों द्वारा दूर किया है। बिम्ब विधान प्रगतिवादी काव्य का प्राण है। बिम्ब सौन्दर्यात्मकता से दूर सामान्य जन जीवन की उपज है। व्यंग्य का प्रयोग बहुत किया है। इन्होंने मुक्त छन्दों में काव्य रचना की है। इन्होंने गीत की भी रचना की है।

इन्होंने वस्तुगत यथार्थ का वैज्ञानिक दृष्टि से यथातथ्य चित्रण किया है। इन्होंने वैज्ञानिक विचारधारा के द्वारा सामाजिक जीवन के विश्लेषण की प्रवृत्ति जो मार्क्सवादी विचारधारा से प्राप्त हुई है, का प्रयोग किया है। इन्होंने विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया है। प्रगतिवादी कवियों ने व्यंग्य–विद्रूप शैली का विकास किया है। इन्होंने अपनी कविता में लोक गीतों, लोक धुनों और लोक भाषा के तत्वों को अपनाया है। लोक धुनों में सोहर, कजरी, चैता, ठुमरी आदि का प्रयोग तथा बोलियों में भोजपुरी, मैथिली आदि का प्रयोग किया है। इन्होंने प्रकृति और मनुष्य के जीवंत संदर्भों से प्रतीक तथा बिम्बों को उठाया है। ''इसके बिम्ब ग्राम जीवन, नगर जीवन, प्राकृतिक परिवेश तथा श्रम जीवि वर्ग की श्रम साधना के विभिन्न क्रिया–कलापों से उठाये गए हैं।''[60]

प्रगतिवादी काव्य धारा के कुछ प्रमुख कवि और कविताएँ हैं – भवानीप्रसाद मिश्र–'गॉव, सन्नाटा और सतपुड़ा के जंगल', केदारनाथ अग्रवाल–'युग की गंगा', 'लोक और आलोक', नरेन्द्र शर्मा–'कदली बन', 'प्यासा निर्झर', 'युग और मैं',शिवमंगल सिंह 'सुमन'–'जीवन के गान', 'हिल्लोल', नागार्जुन–'युगधारा', प्यासी पत्थराई ऑखें', 'खून और शोले', डॉ. रामविलास शर्मा–'रूप तरंग', डॉ. रांघेय राघव–'अखण्ड भारत', 'पिघलते पत्थर', 'राह के दीपक', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'– 'विप्लव गायन'।

3.4.5.**प्रयोगवाद :** प्रयोगवाद का आरम्भ सन् 1943 में प्रकाशित 'तार सप्तक' से माना जाता है। यह सामाजिक,दार्शनिक, भाषायी एवं शैलीगत धरातल पर चरम व्यक्तिवाद का विद्रोह है। इन कविताअें में मध्यवर्गीय

समुदाय के दुर्बलताओं का वास्तविक उद्‌घाटन है। तार सप्तक के संपादक कवि व आलोचक अज्ञेय इसकी भूमिका में कहते हैं कि –''प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किए हैं। यद्यपि किसी काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही है, किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं, उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी छुआ नहीं गया, या अभेद्य मान लिया गया है।''[61] प्रयोगवादी कविताएँ ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ चित्रण हैं। इनमें मध्यवर्गीय दीनता, हीनता, अनास्था, पलायन आदिकाबड़ा मार्मिक चित्रण हुआ है। इसमें मध्यवर्गीय समुदाय के दुर्बलताओं का चित्रण है। इसमें बौद्धिक विवेचन, विश्लेषण और खण्डन–मण्डन की प्रवृत्ति है। इसने समस्त मान्य धारणाओं और परंपराओं को अस्वीकार करने की प्रवृत्ति है। इसमें उलझी हुई मानव संवेदना का चित्रण हुआ हैं। इन कविताओं में व्यक्तिनिष्ठ, अहंवादी, स्वतंत्रचेता, बौद्धिक, तर्कशक्ति में विश्वास रखने वाले मानव का चित्रण हुआ है। ''प्रयोगवादी कविता में व्यक्तित्व की निविडताओं को वैज्ञानिक प्रतीकों द्वारा वस्तुगत रूप में अंकित करने का प्रयत्न रहता है और एक ऐसी बौद्धिक स्थिति उत्पन्न हो जाती है जहॉ वस्तुपरक और व्यक्तिपरक दृष्टिकोण प्रतिद्वन्द्वी न रहकर साधक साध्य बन जाते हैं।''[62] प्रयोगवादी कविताओं में व्यक्ति की अंतस में स्थित व्यक्तिवादी भावचेतना की अभिव्यक्ति हुई है। इसके प्रमुख कवि हैं–अज्ञेय, हरिनारायण व्यास, नेमीचन्द्र जैन, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा आदि।

प्रयोगवादी कविताओं में विषयगत नवीनता देखी जा सकती है। इन्होंने शिल्पविधान एवं रचना कौशल पर अधिक बल दिया है। इन्होंने नएउपमानों, बिम्बों, प्रतीकों एंव छन्द विधानों का प्रयोग किया है। प्रयोगवादी कवियों व कविताओं पर टी एस इलियट, इज़रा पाउण्ड, सार्त्र, एडलर, फ्रायड व युंग जैसे रचनाकारों व विचारकों का प्रभाव देखा जा सकता है। प्रगतिवादी कविताओं की घोर सामाजिकता व नारेबाज़ी की प्रतिक्रिया के रूप में व्यक्ति की आंतरिक चेतना में विद्यमान संघर्ष, संत्रास, संदेह आदि भावों की अभिव्यक्ति प्रयोगवादी कविताओं में हुई है।इन काव्यों में मुख्य रूप से व्यक्ति की अनुभूति, क्षण की महत्ता, अनिश्चितता की स्थिति, अस्तित्ववादी दर्शन, बौद्धिकता व वैज्ञानिकता एवं जटिलतम संवेदना मौजूद है। इसमें –''जीवन के लघुतम क्षणानुभूति के प्रति विशिष्ट चिंतन भावना एवं बौद्धिक धरातल पर हृदय स्पर्शी भावाभिव्यक्ति है। अतः प्रयोगवाद मानवीय मूल्यों की उत्सर्गता का एक सरल प्रयास है जिसका प्रवाह व्यक्ति अनुभूति से समाष्टि अनुभूति की ओर है।''[63]

### 3.4.5.1 **प्रयोगवादी काव्य की प्रवृत्तियॉ**

3.4.5.1.1.**अहंवाद :** इनमें व्यक्ति की प्रधानता है। समाज यहॉ गौण है। व्यक्ति के दुख दर्द के समक्ष समाज का कोई महत्व नहीं है। यह व्यक्तित्व विघटन के प्रति अत्याधिक सचेत हैं। मानवीय मूल्यों के विघटन से होने वाले व्यक्तित्व खण्डन को बचाने हेतु उसका अहं उग्रता से जागृत हो जाता है। ''उसकी दीपवत स्थिति शीलता, अस्तित्व संकट बोध, शिथिल होती नियतिवादिता के प्रति व्यक्तिगत एवं सामाजिक

चेतना, व्यावहार के बीच के संघर्ष में वह अपने अस्तित्व बोध को पहचानता हैं।''[64]

3.4.5.1.2. **बौद्धिकता :** इन कविताओं में बुद्धि व हृदय का तारतम्य स्थापित किया जाता है। इसमें वैज्ञानिक तरीके से अपनी मनोभावों की अभिव्यक्ति हुई है।

3.4.5.1.3. **जटिल संवेदनाएँ :** आंतरिक एवं बाह्य संघर्ष के बीच फसा आदमी का चित्रण हुआ है। आदमी के भीतर की दमित एवं कुंठित यौन परिकल्पनाओं का चित्रण हुआ है। उसकी सौन्दर्य चेतना भी इससे आक्रांत है। ''प्रयोगवादी कवियों ने अपने मानसिक व्यक्तित्व की चेतना को सामाजिक विसंगतियुक्त धरातल पर विखंडित होते पाया है, इसीलिए प्रयोगवादी कवियों के वैयक्तिक और सार्वजनिक के मध्य के संवेदनातमक द्वन्द्व की अभिव्यक्ति हुई है।''[65]कवि आंतरिक तथा बाह्य संघर्ष के बीच उलझी जटिल संवेदनाओं के बीच से अस्तित्व बोध को समझने के लिए बुद्धिपरक तार्किकता का सहारा लेता है।

3.4.5.1.4.**मानवतावादी दृष्टिकोण :** मार्क्सवाद का प्रभाव भी प्रयोगवादी कवियों में होने के कारण उनकी कविताओं में विश्वबन्धुत्व भाव विद्यमान है। वे संघर्ष में वैयक्तिक दुख–दर्दों के लोक से ऊपर उठकर सार्वजनिक पीड़ा बोध की भी अभिव्यक्ति करते हैं।

3.4.5.1.5.**पीड़ा बोध :** सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक वैषम्य के कारण मानव मन, कुंठा, चिंता, निराशा व अवसाद से भर गया है। व्यक्ति विघटन की गहरी पीड़ानुभूति के कारण नष्ट हो रहे जीवन मूल्य ने प्रयोगवादी कवि को व्यथित कर दिया है।

3.4.5.1.6. **ह्रासोन्मुख मध्यवर्ग का चित्रणः** नैराश्य एवं अकेलेपन की भावना से ग्रसित मध्यवर्ग का चित्रण इन कवियों ने किया है। विघटित मूल्यों से ग्रसित मध्यवर्गीय मानसिकता का चित्रण इनकी कविताओं में प्रभवशाली ढंग से हुआ।

3.4.5.1.7.**नगर बोध और नगर सभ्यता का चित्रण :** नगर जीवन की खोखली चमक–दमक, मूल्यहीनता, यांत्रिकता आदि का चित्रण प्रयोगवादी कवियों ने किया है। ''नगरीय जीवन में एक ओर जहॉ घुटन, बौनापन, अकेलापन आदि महसूस होता है, वहीं दूसरी ओर उसकी चमक–दमक, विकास–प्रकाश से प्रभावित हुए बिना भी कवि नहीं रह पाता है।''[66]स्वार्थ एवं अकेलेपन से युक्त महानगरीय जीवन में कवि पूँजीवादी खोखलेपन और प्रचारपरकता के प्रतीक बड़े–बड़े पोस्टरों के सामने अपने को बौना महसूस करता है।

3.4.5.1.8. **सौन्दर्य एवं प्रेम :** प्रयोगवादी कवि यद्यपि विसंगतिपूर्ण जीवन की कुंठा एवं पीड़ा का वर्णन किया है, साथ ही जीवन से जुड़े अभिन्न तत्व सौन्दर्य एवं प्रेम के प्रति पूरी आस्था प्रकट की है।

3.4.5.1.9.**भाषा एवं शिल्प :** भाषा अधिक व्यावहारिक एवं कृत्रिम है। मुक्त छन्द का प्रयोग किया गया है। शहरी परिवेश के होते हुए भी इनमें गॉव के शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

3.4.6. **नई कविताः**सन् 1952 में यह काव्यान्दोलन का आरम्भ होता है। इसे नयी कविता नाम पहली बार रचनाकार जगदीश गुप्त अपनी पत्रिका नये पत्ते में लिखे लेख से प्राप्त होता हैं। पाश्चात्य साहित्य के काव्य क्षेत्र में 'न्यू पॉयट्री' नाम से आए आन्दोलन का इस पर गहरा प्रभाव पड़ा

है। नयी कविता का नामांकन अपने पूर्ववर्ती काव्यान्दोलन के प्रतिक्रिया के रूप में न होकर, एक व्यापक काव्यान्दोलन की रचनात्मक उपलब्धि के कारण होता है। नयी कविता में मानवीय चेतना की अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति का श्रेष्ठतम रूप है। यह काव्य की उदात्तीकरण के स्थान पर उसके भावों में घनत्व एवं तीव्रता लाना चाहता है। सुमित्रानन्दन पंत का कहना है –''नयी कविता ने मानव भावना को छायावादी सौन्दर्य के धड़कते हुए पालने से बलपूर्वक उठाकर उसे जीवन समुद्र की उत्ताल तरंगों में पेंग भरने को छोड़ दिया है, जहॉ वह साहस के साथ सुख–दुख, आशा–निराशा के घात–प्रतिघातों में बढ़ती हुई जग जीवन के ऑधी–तूफानों का सामना कर सके, अन्तर्वेदना से मुक्त होकर सामाजिक व्यथा के अनुभवों से परिपक्व बन सके।''[67]

नए कवि हर परंपरागत विषय और चेतना, मान्यता और प्रत्यय को एक नए वैज्ञानिक चिंतन पर आधारित मानदण्डों पर तौलकर ही स्वीकार करता है। भारत की स्वाधीनता से पूर्व जो सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन के सपने थे, वह धीरे–धीरे बिखरने लगे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी भारत की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में कोई ठोस बदलाव नहीं आ पाया जिससे जनता में मोह भंग की स्थिति उत्पन्न होने लगी। ''नयी कविता में यह मोहभंग नये जीवन यथार्थ को स्वीकार करने और विरूप स्थितियों की यातना को अंगीकार करते हुए आदर्शवाद और भाववाद पर तीखा प्रहार है।''[68] नयी कविता अनुभूति की सच्चाई और यथार्थ बोध पर अधिक बल देता है। ग्राम्य एवं नगर जीवन दोनों का प्रस्तुतीकरण नई कविता में हुआ है। इसने अति बौद्धिकता के स्थान पर सहज संवेदनशील हृदय के आधार पर मानव की मर्मस्पर्शी भावनाओं एवं रागात्मक पक्ष को

महत्ता दी है। नई कविता के प्रमुख हस्ताक्षर लक्ष्मीकांत वर्मा कहते हैं कि –''आज की नई कविता भी परंपरा और रीति के विरोध में जीवन सत्य के उन आयामों और धरातलों को छूती है, जो नित्यप्रिय जीवन में आत्म अनुभूति के आधार पर व्यक्त होते हैं। नई कविता के नएपन में यही ऐतिहासिक, वैयक्तिक, सामाजिक और आत्मव्यंजक सत्य वे आयाम और धरातल विकसित करते हैं, जो परंपरा से भिन्न होते हुए भी सार्थक एवं समर्थ रूप में नयी अभिव्यंजना को अवतरित करते हैं।''[69]नई कविता की मुख्य विषयवस्तु हैं– समसामयिक राजनीति, व्यक्ति की संश्लिष्ट एवं जटिल जीवन समस्याएं, प्रकृति के प्रति तटस्थ रागात्मक दृष्टिकोण, प्रेम और काम संबंधी भावनाओं में यथार्थवादी रुझान, जीवन और मृत्यु संबंधी चिंतन आदि। नयी कविता में आंतरिक द्वन्द्व, रूढ़ियों के प्रति विद्रोह, वर्तमान यांत्रिक सभ्यता की विसंगतियों के प्रति आक्रोश, व्यक्ति स्वातंत्र्य के प्रति आग्रह और नवीन जीवन मूल्यों की उपलब्धि के प्रति अकुलाहट की अभिव्यक्ति विद्यमान है। नया कवि आधुनिकता द्वारा स्थापित किसी भी सार्थक मूल्य को अपने परिवेश में जीवंत न पाकर उसके प्रति उदासीन है। वह मूल्यों की स्थापना नहीं, मूल्यों के नाम पर प्रतिष्ठित खोखली आस्थाओं और आदर्शों की विसंगतियों को उद्‌घाटित करता है।नयी कविता के प्रमुख कवि एवं काव्य हैं–लक्ष्मीकांत वर्मा–'आदमी का ज़हर', 'खाली कुर्सी की आत्मा',सर्वेश्वर दयाल सक्सेना –'काठ की घंटियॉ', 'बॉस का पुल', 'एक सूनी नाव',श्रीकांत वर्मा–'माया दर्पण', 'भटका मेघ', 'दिनारम्भ',नरेश मेहता–'संशय की एक रात', 'मेरा समर्पित एकांत', 'महाप्रस्थान',धर्मवीर भारती–'सातगीत वर्ष', ठण्डा लोहा', 'कनुप्रिया,रघुवीर सहाय–'आत्महत्या के विरुद्ध', 'सीढ़ियों पर धूप

में',मुक्तिबोध–चॉद का मुह टेढ़ा है', 'लकड़ी का रावण',भवानी प्रसाद मिश्र–'गीत फरोश', 'बुनी हुई रस्सी',कुंवर नारायण –'चक्रव्यूह', 'आत्मजयी', 'परिवेश : हम तुम',कीर्ति चौधरी –'खुले आसमान के नीचे', 'निस्तब्ध आधी रात'।

### 3.4.6.1. **नयी कविता की प्रवृत्तियॉ**

.3.4.6.1.1. **टूटन और यंत्रणा :** नयी कविता में अस्थिर एवं संशयग्रस्त मानव का चित्रण हुआ है। इसमें मानव जीवन की अर्थहीनता तथा दिशाहीनता को दिखाया है। ''नयी कविता में दिशाहीन मानव की अर्थहीन जिन्दगी में पूंजीवादी अर्थ तंत्र के दबाव के फलस्वरूप उभरती हुई टूटन और यंत्रणा का लगातार चित्रण हुआ है।''[70]

3.4.6.1.2. **यांत्रिकता, अमानवीयता, अकेलापन :** अस्पताल में बिस्तर पर पड़े बीमार की दृष्टि से वह जिन्दगी को देखने लगा है। सिर पर घूमते हुए बिजली के पंखे की यांत्रिक गति के साथ वह अपने जीवन की तुलना करता है। अपने जीवन के अकेलेपन और अवसाद को कही अधिक गहराई से देखता है। सामाजिक मूल्यों के ह्रास से उत्पन्न मोहभंग की स्थिति से वह अकेलापन, संत्रास, मृत्युबोध, निराशा आदि से ग्रसित है। ''यथार्थवाद और जिए हुए सत्य का आग्रही साहित्यकार देख रहा था कि आधुनिकता ने मध्यकालीन रूढ़ धर्म–मूल्यों पर आघात कर जिन भौतिकवादी मूल्यों की स्थापना की थी, वे मूल्य, मूल्य न रहकर सुविधा संपन्न लोगों के भोग–विलास और शोषण के कवच बन गए हैं।''[71]

3.4.6.1.3.**अस्तित्व की पहचान और व्यक्तिवाद :** पूंजीवादी दबाव से कवि अपने अस्तित्व के चार दीवारी में बंधकर रह जाता है। अस्तित्व की

पहचान का एक अलग पहलू नयी कविता में हमें प्राप्त होता है। अस्तित्व की यह चेतना व्यक्तिवादी होते हुए भी जीवन की निरंतरता और विपरीत परिस्थितियों में संघर्ष करते हुए अपने अस्तित्व को अक्षुण्ण रखने की मानवीय संघर्षशीलता इसमें विद्यमान है। ''नयी कवता में व्यक्तिवाद का स्वरूप दोहरा है। एक तो वह जो अस्तित्ववाद की आत्मचेतना तथा अहंकेन्द्रियता से उद्‌भूत है और दूसरा पूंजीवादी, जनवाद विरोधी तथा सामूहिकता के विपर्यय के रूप में प्रस्तावित व्यक्ति चेतना के दर्शन से उत्पन्न हुआ है।''[72]

3.4.6.1.4. **लघुमानव :** लघुमानव की अवधारणा पश्चिम की देन है। यंत्र युग की विभीषिका के फलस्वरूप लघु मानव का जन्म होता है। रोबोट, कम्प्यूटर आदि का आविष्कार व एटम बम्ब व हाइड्रोजन बम्ब जैसे महाविनाशकारी अस्त्रों के निर्माण से इंसान के हृदय और कल्पना में लघुता और निरुपायता की भावना भर दी। लघु मानव का अर्थ है वह सामान्य मनुष्य जो अपनी सारी संवेदना, भूख प्यास और मानसिक ऑच को लिये–दिये उपेक्षित है। ''लघु मानव किसी दर्शन, संप्रदाय या राजनीतिक दल की दृष्टि से दिखाई पड़ने वाला मानव नहीं है, बल्कि कवि की सहज मानवीय संवेदना और आधुनिक यथार्थवादी दृष्टि से अपने सभी रूपों में दिखाई पड़ने वाला जीवित मनुष्य है जो किसी भी वर्ग का नहीं और उन सभी वर्गों का है जो जीवन के दर्दों के प्रति ईमानदार है।''[73]नया कवि लघुमानवता की संकल्पना अपने चारों ओर फैली सामाजिक समस्याओं से घिरे साधारण इंसान की अन्दर उत्पन्न पराजय एवं कुंठा की भावना से उत्पन्न होती है। अपने अस्तित्व की

पहचान को बनाए रखने के भरसक प्रयत्न ने नयी कवियों को लघु मानव की अपराजय अहं की ओर काव्य रचना करने की नयी दृष्टि दी।

3.4.6.1.5. **आधुनिक भावबोध :** विज्ञान के विकास के साथ–साथ नवीन विश्वबोध का निर्माण हुआ और जिससे क्रांतिकारी परिवर्तन समाज के हर तबके में आया। मगर इनके साथ–साथ परंपराओं का खण्डन, धार्मिक मान्यताओं पर प्रश्न चिह्न एवं इंसान की लघुता सामने आई जिससे आस्था–अनास्था, विश्वास–संशय, सामाजिकता–वैयक्तिकता के बीच आत्मसघर्ष पैदा हुआ। इन्हीं आत्मसंघर्षों से होकर नई कविता आत्माभिव्यक्ति करती है। ''समाज में मौजूद धर्म संप्रदायों और उनके बीच के संघर्षों, जातिगत दंगों, शोषक–शोषित का द्वन्द्व आदि से नए कवि हताशा एवं कुंठा की स्थिति में चला जाता है। ऐसे ही पतनोन्मुखी मानसिकता से साक्षात्कार करके सामाजिक उद्धार हेतु इनमें विद्यमान मिथ्या प्रपंचों का पर्दाफाश करता है।''[74]

3.4.6.1.6. **क्षण का महत्व** : जीवन का एक सुखद क्षण बाकि सारे जीवन से श्रेयस्कर है। क्षण में जीवन व्यापन करना और क्षण के सुख को अंगीकार कर लेना ही जीवन का सही उपयोग है।

3.4.6.1.7. **वर्ग चेतना और वर्ग संघर्ष :** मध्यवर्गीय विडम्बनाओं से पृथक इन कवियों ने अमीरी–गरीबी के बीच की खाई का चित्रण भी किया है। निम्न वर्ग के साथ खड़े होकर व उनके संघर्ष में भाग लेकर पूँजीवादी शक्तियों के खिलाफ इन कवियों ने आवाज़ उठाई है। ''शोषित जनता की सामाजिक दुरवस्था तथा आर्थिक विपन्नता के चित्रण के साथ–साथ

संघर्ष के लिए उनको उत्साहित करने और उनके छोटे बड़े संघर्षों को रेखांकित किया है।''[75]

3.4.6.1.8. **प्रकृति चित्रण :** नये कवि के लिए प्रकृति अलग से संवेद्य न होकर कवि की मूल संवेदना का अंग बन जाती है और उसको गहरा करती है। प्रकृति के दृश्य उपादानों को नया कवि न केवल रोमान के लिए बल्कि वर्ग चेतना के लिए भी इस्तेमाल करता है। नया कवि अपने व्यक्तिगत कुंठा, अकेलापन और टूटन को भी प्रकृति के सुदृश्यों में प्रतिबिम्बित करता दीखता है। ''आधुनिकाल की विसंगतियों से चेतन और अवचेतन में जो प्रभाव पड़ता है उसका चित्रण प्राकृतिक उपादानों के सहारे नए कवियों ने किया है।''[76]

3.4.6.1.9. **अनुभूति की प्रामाणिकता :** नये कवियों को जीवन की परिस्थिति से सीधा संबंध है। इसके साथ–साथ इनकी कविताओं में वस्तुओं की सत्ता से भी सीधा संबंध है। कवि मानता है कि मनोलोक की कोई सीमा नहीं होती और कोई भी बात कवि के चेतना में गहराई तक प्रविष्ट हो सकती है। इसलिए अनुभूतियॉ परंपरागत नहीं होतीं। इसलिए अनुभूति की सच्चाई में यह कवि विश्वास रखते हैं। वह सच्चाई को, अनुभूत तथ्य को बेहिचक कह देता है। यह कवि अनुभूत क्षण को सत्य मानते हैं।

3.4.6.1.10. **अहंवाद :** विघटनपूर्ण सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक परिस्थितियों के मध्य नये कवि ने अपनी रचना का प्रारम्भ किया। इसलिए उनमें टूटी मानसिकता व अपने विच्छृंखल व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा की लालसा विद्यमान है। नयी कविता में ''मैं'' न सिर्फ कवि के

आत्माभिव्यक्ति को द्योतित करता है बल्कि वह पूरे समाज का भी प्रतिनिधित्व करता है। ''स्वयं को विसर्जित करते हुए भी कवि को अपनी महान वैयक्तिकता, अद्वितीयता और सामर्थ्य का ध्यान बना रहता है।''[77]

3.4.6.1.11. **अनास्था, निराशा एवं कुंठा की भावनाः** नये कवियों ने परंपराजन्य साहित्यिक मूल्यों का खण्डन किया है, साथ ही जीवन और समाज के प्रतिष्ठित मूल्यों को भी निरर्थक माना। प्रतिष्ठित मूल्यों के खण्डन के बाद फिर उसके सामने,इस विच्छृंखल समाज में निराश व कुंठा ही बचा होता है। ''सामाजिक स्वीकृतियों से अपूर्ण नये कवि में अकेलेपन की भावना उत्तेजना के क्षणों को दमित कर उसे निढाल और शिथिल बना देती है। ऐसी मनःस्थिति के मध्य जो भाव निःसृत होते हैं, उसमें आत्मलीनता, अनास्था, पराजय भाव, निराशा, वेदना, कुंठा, अनिश्चय है।''[78]

3.4.6.1.12. **समष्टिभाव का चित्रण :** नये कवियों ने न सिर्फ घोर व्यक्तिवादी कविताओं की रचना की है बल्कि समाज उत्थान की भी कविताएँ लिखी हैं। नये कवि की सामाजिकता व्यक्ति की वैयक्तिक अनुभूतियों से होकर गुज़रती है। ''जीवन के यथार्थ की प्रतिकूल अवस्था का प्रभाव नए कवियों के कविताओं में पाया जाता है और इसी के फलस्वरूप उनमें सामाजिकता का प्रतिपादन भी हुआ है।''[79]

3.4.6.1.13. **व्यंग्य :** नये कवियों ने अमंगलकारी सामाजिक एवं राजनीतिक प्रवृत्तियों पर कुठाराघात किया है। नयी कविता का युग मानवीय मूल्यों का सर्वाधिक विघटन का युग है। अपनी असफलता, वेदना, अभावग्रस्तता आदि के कारण वह त्रस्त है। इसी मानसिकता से ही व्यंग्य का उत्पन्न

हुआ है। ''पूँजीवादी व राजनीतिज्ञों का अभद्र खटबंधन, निम्न वर्ग की दारुण अवस्था, निम्न मध्यवर्ग की कभी न खत्म हो रही अभावग्रस्त जीवन, शहरी जीवन की कृत्रिमताओं और असफलताओं का भय एवं संत्रास आदि ने नए कवियों को व्यंग्यात्मक रचनाएँ लिखने की परिस्थिति उत्पन्न की।''[80]

3.4.6.1.14. **लोक संस्कृति एवं ग्रामीण जनजीवन :** नये कवियों ने ग्रामीण जीवन को अपने काव्यों में जीवंत करने के लिए लोक गीतों का सहारा लिया है। किसान के जीवन को अपने काव्य में प्रस्तुत कर देश की ग्रामीण परिवेश में व्याप्त अभावग्रस्त जीवन का चित्रण किया है। देश की संस्कृति की जननी होते हुए भी गॉव के परिवेश में फैलती निराशा, पलायनवादी भावना आदि का चित्रण कवि करता है। दूसरी ओर गॉव का सुन्दर चित्रण भी इन कविताओं में देखने को मिलता है। ''नयी कविता ने लोक जीवन की अनुभूति, सौन्दर्यबोध, प्रकृति और उसके प्रश्नों को एक सहज और उदार मानवीय भूमि पर ग्रहण किया है। साथ ही साथ लोक जीवन के बिम्बों, प्रतीकों, शब्दों और उपमानों को लोक जीवन के बीच से चुनकर उसने अपने को अत्यधिक संवेदनापूर्ण और सजीव बनाया है।''[81]

3.4.6.1.15.**पौराणिक संदर्भ :** यह संदर्भ आधुनिक मानव की संत्रासपूर्ण परिस्थिति को उजागर करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं। पौराणिक और ऐतिहासिक पात्रों को लेकर उनमें आज के मानव की मानसिक विडम्बनाओं, संशयों, निराशाओं को प्रयुक्त किया है। पौराणिक पात्र नए कवियों की रचनाओं में अपने देवत्व और अलौकिक छवि को उतारकर साधारण मानव की तरह जीवन की समस्याओं से झूंझते हुए दिखाई

पड़ते हैं। इस तरह के रचनाओं में प्रमुख हैं– 'संशय की एक रात' (नरेश मेहता), 'कनुप्रिया', 'अन्धायुग' (धर्मवीर भारती), 'आत्मजयी' (कुंवर नारायण), 'एक कण्ठ विषपाई' (दुष्यंत कुमार) आदि।

3.4.6.1.16. **भाषा एवं शिल्प :** नयी कविता ने अपनी अलग शैली निर्माण न करते हुए भी आज की प्रचलित शब्दावली, छन्दोरचना और अभिव्यक्ति प्रणाली को आगे बढ़ाया है। इस दृष्टि से नई कविता ने राजनीति–प्रधान शब्दावली से कविता को मुक्त किया और उसको जीवन की शब्दावली से सजाया। नया कवि छन्द को संवारने की अपेक्षा वस्तु तत्व को व्यवस्थित करने, उसके रूप को उभारने और अनुभूति के मूल ढॉचे को सशक्त बनाने का विशेष प्रयत्न किया है। छन्द विधान में मुक्त या स्वच्छंद छन्द का प्रयोग हुआ है जिसमें अनियमित चरण एवं असमान गति पर विशेष बल है। पद्यात्मकता से गद्यत्मकता की ओर है। नाथ की लय से अर्थ की लय की ओर संचरण हुआ है। भाषा में नये प्रयोग हुए हैं। शब्द, पद, वाक्य, मुहावरे व लोकोक्तियों में नये अर्थ। सरल भाषा का प्रयोग हुआ है। तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशी भाषा एवं बोलियों के शब्द ग्रहण किये हैं। ''नए शब्द जो अभी तक काव्य भाषा में स्थान नहीं बना सके थे, उनका नयी कविता में प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ तथा इसके साथ ही कुछ नए शब्दों को कवियों ने गढ़ भी लिया है।''[82] नयी कविता में प्रयुक्त प्रमुख बिम्ब, प्रतीक एवं अलंकार हैं –

3.4.6.1.16.1**बिम्ब :** वस्तु बिम्ब, भावात्मक बिम्ब, कलात्मक बिम्ब, प्राकृतिक बिम्ब, पौराणिक बिम्ब, वैज्ञानिक बिम्ब आदि का प्रयोग हुआ है।

3.4.6.1.16.2 **प्रतीक :** कलात्मक प्रतीक, प्राकृतिक प्रतीक, पौराणिक प्रतीक, ऐतिहासिक प्रतीक, वैज्ञानिक प्रतीक, यौन प्रतीक आदि का प्रयोग हुआ है।

3.4.6.1.16.3 **अलंकार :** अनुप्रास अलंकार, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अलंकार आदि का प्रयोग हुआ है।

3.4.7.**साठोत्तरी कविता :** स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी भारतीय समाज में आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों के आधार पर कोई बदलाव नहीं आया। उच्च वर्ग अधिक लाभ में रहा और निम्न वर्ग की स्थिति बद्तर होती गई। विकास के नाम पर औद्योगीकरण और शहरीकरण के आगमन से देश की सामान्य जनता की जीवन परिस्थितियों में खास परिवर्तन नहीं आ पाया। साधारण जनता सत्ता एवं पूंजीवादी शक्तियों के शिकार बनते गए। उनका शोषण होता गया। विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन होता गया। जनता बेरोज़गारी, गरीबीपन, से त्रस्त हो गया। उसके परिणामस्वरूप एक ऐसी पीढ़ी का आविर्भाव हुआ जो मनुष्य, समाज, शासन, धर्म, परिवार, नैतिकता, नियम आदि को गंभीरता से लेने के लिए तैयार नहीं रहा बल्कि संपूर्ण व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न लगाया। इसका प्रमुख कारण यहॉ की व्यवस्था है। एक ऐसी व्यवस्था जो जनता का निरंतर शोषण कर रही है। इसलिए साठोतरी कविता में निषेध का स्वर है। इसमें किसी भी संस्थान व व्यवस्था का खण्डन किया है। ''आज की कविता मेंअस्वीकृति की, निषेध की अनिवार्यत को सहज मानकर स्वीकार करती है। उसे किसी प्रकार का व्यामोह या अतीतोन्मुख वैभव अथवा रागात्मकता सेतीव्र घृणा है। आज का कवि रोमैंटिक वृत्ति का

विरोधी, परंपरा से मान्य काव्य रूढ़ियों को स्वाभावतः विघटन करने वाला और नए शब्दों का प्रस्तावक है।''[83]साठोत्तरी कवियों ने अतीत का घोर विरोध किया है। अतीत का अंधा मोह गलत है क्योंकि यह समकालीन परिस्थितियों से जनसाधारण को विच्छेद करती है। यह कवि रागात्मकता और रोमांटिक प्रवृत्ति का घोर विरोध करते हैं। परंपरा और अतीत के गौरव गान को कवि व्यर्थ बताते हैं।

इस काव्य आन्दोलन का मुख्य प्रेरणा स्रोत 1967 के नक्सलबाड़ी आन्दोलन है। 1962 की चीन से पराजय, योजनाओं के आधे–अधूरे नतीजे, मध्यवर्गीय विपन्नता, छात्र असंतोष, प्रांतों का विघटन, सूखा, भूखमरी, रुपये का अवमूल्यन, निम्न वर्ग का असंतोष, बेरोज़गारी, महंगाई, दलितों पर अत्याचार–शोषण, भ्रष्टाचार आदि कारणों से उस समय के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक क्षेत्र घोर संकट में था। इन सबके फलस्वरूप व्यवस्था विरोध और संघर्ष धर्मिता का स्वर तेज़ हुआ। ''कवियों ने महसूस किया था कि शासक वर्ग सत्ता में बने रहने के लिए तरह–तरह के हथकंडे अपना रहा है, चालें चल रहा है। शोषण के नीचे विशाल जनसमुदाय पिस रहा है। सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक साधनों पर, सत्ताधरियों का नियंत्रण है। जनसाधारण में चेतना नहीं है, वह दुश्मनों को पहचान नहीं पा रहा है। कवियों को अपनी मध्यवर्गीय कमज़ोरियों से भी जूझना है। कवियों के सामने दो काम थे – शोषकों को बेनकाब करना और जन को संगठित करना।''[84]

इस काल के प्रमुख काव्यान्दोलन हैं – अकविता, युवा कविता, भूखी पीढ़ी की कविता, सनातन सूर्योदयी कविता, बीट कविता आदि।

इनका मुख्य उद्देश्य अन्याय, शोषण, दमन आदि से जनसाधारण को अवगत कराना, उसका विरोध करना और सामाजिक कल्याण की स्थापना करना। साठोत्तरी कविता का विद्रोह दो स्तरों पर विद्यमान है–उस संपूर्ण ढॉचे के विरुद्ध जिस पर आज की स्थापित सत्ता और उच्चवर्गीय संस्कृति के खोखले मूल्य टंगे हुए हैं और उस कुचक्रपूर्ण दबाव के विरुद्ध जो उसे उस मृत ढॉचे के भीतर अपनी विलक्षण प्रतिभा को स्थापित करने से रोकता है।

परिवारिक एवं सामाजिक संबंध इन्हें निरर्थक लगते हैं। साठोत्तरी काव्य पीढी की बेचैनी में विवशता और कुछ न कर पाने का दर्द है। ''साठोत्तरी कविताओं में नकार की भावना अधिक है। एक आततायी जड़ता के भीतर हमारा नकार वस्तुतः एक बृहत्तर स्वीकृति की चेष्टा है। हम साहस के साथ खतरों के बीच स्थितियों को नकारते चल रहे हैं। फाजिज्म, व्यावसायिकता, पूॅजीवादी खतरों के प्रति हमारी पीढ़ी पूरी तरहसचेत है। नकार हमारी आंतरिक स्वतंत्रता का प्रमाण है।''[85]इन कवियों के अनुसार लोकतंत्र पूंजीवाद को विकास का अबाधित अवसर प्रदान करने वाली एक राजनीतिक आड़ हो गया है। इन कविताओं में संत्रास, विसंगति तथा खलनायकत्व का आभास सर्वत्र है, फिर भी उन्होंने अपने को समन्वित एवं संतुलित करने का सदैव प्रयास किया है। इन कवियों ने विसंगति, विघटन, संत्रास और अनास्था की ऐकांतिक अभिव्यक्ति को अपने काव्य का विषय चुना। उन्होंने यह सिद्ध किया कि इन स्थितियों ने जीवन को इस प्रकार जकड़ लिया है कि कहीं दूसरी तरफ देखने की गुंजाइश ही नहीं है। उनकी कविता अहं भावना से युक्त अनास्था और अनुत्तरदायित्व के बीच स्थित है।

इनमें भाषा की दुरूहता, भावभंगिमा की क्लिष्टता, नए बिम्ब, प्रतीक, फैंटसी का प्रयोग हुआ है। उनकी अनास्था में एक प्रकार की व्यक्तिगत तथा सामाजिक पीड़ा व दुख दर्द छिपा है। यह जीवन की विफलताओं, विडम्बनाओं, विसंगतियों और निराशा से ऊबी हुई एक पीढ़ी है। इस काव्यधारा के प्रमुख कवि श्याम परमार का कथन है– ''काव्य में चित्रकला की नव्य शैली अपनाने के आग्रही हैं। अधूरे वाक्य की करतनें, औद्धत्य, ऊलजलूल प्रसंगों, खण्डित फैंटसी आदि के माध्यम से कवि हृदय की बिखराव को ऐक्स स्थापन देने के लिए लालायित है।'' एक अन्य कवि मुद्राराक्षस का कथन है– ''जीवन की अनर्गलता को भाषा की निरर्थकता और संदर्भहीनता के फलक पर चित्रित करने प्रयत्न किया है। अकविता के कवि परंपरानुमोदित को अपराध समझते हैं।'' इस समय की कविताओं में मौजूद मुख्य घटन हैं– अनास्था एवं अविश्वास, असफलता और घोर नैराश्य की भावना, कुंठा एवं अवसाद ग्रस्त मानव की संकल्पना, अत्याचार, अनाचार एवं अन्याय के प्रति आक्रोश, अस्तित्वबोध, स्वाभिमान एवं आत्मसम्मान की भावना, रूढ़ियों से मुक्ति की आकांक्षा तथा सपाटबयानी। ''राष्ट्र के खोखलेपन, दिवालिएपन, पागलपन तथा सामाजिक घिनौनी स्थितियों को देखकर कवियों के मन में आत्मग्लानि जैसे विचार उत्पन्न हुई। तत्पश्चत् प्राचीन जर्जर मूल्यों, अव्यवस्था, दुर्गति, विघटन आदि से क्षुब्ध होकर व्यंग्योक्तियों और विद्रूपताओं के माध्यम से कवियों ने अपनी वाणी को मुखरित किया। उनमें नव्यता के प्रति न कोई आकर्षण था न प्राचीनता के प्रति व्यामोह। विघटित मानव मूल्यों में कवि अस्तित्वबोध तलाश रहा था।''[86]

इस काल के कुछ प्रमुख कवि और उनकी कविताएँ हैं– जगदीश चतुर्वेदी–'निषेध', भारत भूषण अग्रवाल–'एक उठा हुआ हाथ', राजकमल चौधरी–'मुक्तिप्रसंग', सुधामा पाण्डेय 'धूमिल'–'संसद से सड़क तक', अशोक वाजपेयी–'संक्रांत', श्याम परमार–'कविताएँ : कविता से बाहर', चन्द्रकांत देवताले–'हड्डियों में छिपा ज्वर', कैलाश वाजपेयी–'तीसरा अंधेरा', अजित कुमार–'कविताएँ 1964', गंगा प्रसाद विमल–'विज्जप', सौमित्र मोहन–'लुकमान अली'।

### 3.4.7.1 साठोत्तरी काव्य की प्रवृत्तियॉ

3.4.7.1.1**भय, आतंक की उपस्थिति अथवा संत्रासः** कवि के चारों ओर भय व आतंक का वातावरण है, उसे वह ध्वस्त करने में असमर्थ है तथा उसे ही अपना संरक्षक के रूप में स्वीकारता है।''और आवाज़ ऊँची कर/जंगल संरक्षक हैंहमारा/जंगल विधान है हमारा/भंग नहीं कर सकता उसे कोइ/बरदाश्त नहीं हो सकती/जंगल की तबाही।''[87]

3.4.7.1.2**व्यवस्था की अव्यवस्था के प्रति आक्रोश :** इन कवियों का विश्वास है कि व्यवस्था आम आदमी के लिए नहीं, बल्कि आम आदमी व्यवस्था के लिए है। व्यवस्था से संवेदना, मानवता की आशा करना ठीक नहीं है।''वे हमेशा बेरहम होते हैं/दूसरों का आकाश अपनी मुट्ठियों में बंद करने वाले/निचोड़ लेते हैं होठों की मुस्कान/घनहर खेतों में सुरंगें बिछा देते हैं।''[88]

3.4.7.1.3**अव्यवस्था के उत्तरदायी राजनीतिज्ञों के प्रति आक्रोश :** देश में जो व्यवस्था और उत्पीड़न की स्थिति है, जिस प्रकार जनता शोषित एवं संत्रस्त हैं, उसकी वजह यहॉ के राजनीतिज्ञ वर्ग के पूँजीवादी दिमाग के

कारण है। जनता को नेता हर तरीके से लूट रहे हैं।''आदमी की खाल में/गधे और भेडिये का/आधा–आधा भेजा लिए/घूमते–घूमते राजनीति के झण्डे लगा/पूरा देश बूचड़खाने की तरह है।''[89]

3.4.7.1.4**स्वाभिमान नष्ट होने की कचोट :** अस्तित्व का संकट और उससे उत्पन्न आक्रोश इस काल के कविताओं की विशेषता है। शोषक वर्ग ने जनता को प्रतिक्रियाहीन समूह के रूप में तब्दील कर दिया है। कोई भी प्रतिक्रिया जो शासक वर्ग के खिलाफ उठता है वह दबा दिया जाता है। कवि निराश, कुठा, आत्मपीड़न महसूस करता है, किन्तु कह नहीं सकता, क्योंकि बोलना मना है। उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति पर पाबंध है।''बहुत कुछ मैं सोचता रहता हूँ पर कहता नहीं/बोलना भी है मना, सच बोलना तो दर किनार/इस सिरे से उस सिरे तक सब सरीके जुर्म हैं/आदमी या तो जमानत पर रिहा है या फरार।''[90]

3.4.7.1.5**पूर्ण मोहभंग की स्थिति :** कवि का मोहभंग पूर्ण स्थिति को पा गया है और इसके विरुद्ध एक आक्रोश उमड रही है, जो न केवल कविता के स्तर पर बल्कि कवि खुलकर समाज के सामने अपने तेवर के साथ आना चाहता है। इसलिए वह इस आक्रोश को परिवर्तन में तब्दील करना चाहता है।

3.4.7.1.6**विद्रोह और क्रांति की भावना :** कवि क्रांति द्वारा विद्यमान भ्रष्ट व्यवस्था को नष्ट कर देना चाहता है। प्रत्येक गरीब व्यक्ति को वह इसके लिए आह्वान करता है। इसलिए वह कहता है –''मैं हर नंगे आदमी को/शंकर बना दूंगा/...../हर उंगली को ..... त्रिशूल''[91]

3.4.7.1.7 **भाषा के प्रति नए तेवर :** कवियों ने भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का सही साधन बनाया है। भाषा के अभिव्यक्ति की पारंपरिक माध्यम को नकारकर नये प्रयोगों पर बल दिया है। इन्होंने भाषा को अपने ढंग से ढालने का साहस किया है।''अब यहॉ कोई अर्थ खोजना व्यर्थ है/पेशेवर भाषा के तस्कर संकेतों/और बैलमुत्ती इबारतों में/अर्थ खोजना व्यर्थ है।''''इन कवियों ने भाषा को सही मायने में अभिव्यक्ति प्रेषण का कंप्यूटरीकृत यंत्र या यों कहें हथियार बना डाला है।''[92]

3.4.7.1.8 **गद्यात्मकता की प्रचुरताः** यहॉ काव्य भाषा सीधे गद्य के निकट पहुॅच गई है। ''इस काव्य भाषा में शब्द एवं अर्थ की लय न होते हुए भी जीवन का संगीत अवश्य भरा हुआ है।''[93]

3.4.7.1.9 **कथ्य में सपाटबयानी :** इन कवियों ने लक्षण व्यंजन शक्तियों का प्रयोग न कर सपाट भाषा का प्रयोग किया है। डॉ. नामवर सिंह कहते हैं– ''छठे दशक के अंत और सातवें दशक के आरम्भ में सामाजिक स्थिति इतनी विषम हो उठी कि उसकी चुनौती के सामने बिम्ब विधान कविता के लिए अनावश्यक भार प्रतीत होने लगा – समस्या परिस्थितियों के सीधे साक्षात्कार की थी, प्रश्न हर चीज को उसके सही नाम से पुकारने का था..... इस मुश्किल ने क्रमशः उस प्रवृत्ति को जन्म दिया जिसे सपाटबयानी कहते हैं।''[94]

3.4.7.1.10 **विविध विषयों एवं भाषाओं से ग्रहीत शब्द भण्डार :** तत्सम शब्दावली को कम तथा देशज व तत्भव शब्दावली को अधिक महत्व दिया है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में शब्दों को अभिव्यंजना शक्ति के विकास हेतु किया गया है। ''इस काव्य परंपरा में धर्म, दर्शन, इतिहास, राजनीति,

भूगोल, समाजशास्त्र तथा विज्ञान जैसे विषयों से संबंधित शब्दावली का भरमार है। इन कवियों ने भाषा की सार्थकता को बढ़ाने के लिए इन शब्दों का चयन किया व सुविधानुसार इनमें कांट–छांट भी की।''[95]

3.4.7.1.11 **यौन संदर्भों से संबंधित अश्लीलता :** साठोत्तरी कवियों ने मुख्य रूप से नैतिकता एवं परंपरागत नीति व रीतियों पर प्रश्न चिह्न लगाने हेतु अश्लील शब्दों का प्रयोग किया है।

3.4.7.1.12 **परिवेश से जुड़ी हुई सांकेतिकता :** साठोत्तरी कवि बयान या वक्तव्य न देकर सांकेतिक होता है। यह ज्यादातर राजनीतिक खोखलेपन को उजागर करने के लिए किया गया है।

3.4.7.1.13 **बिम्ब, प्रतीक और छन्द :** सामान्य जन जीवन से बिम्बों और प्रतीकों का चयन किया गया है। जैसे भेड़, भेड़िया, अजगर आदि।इन्होंने मुक्त छन्द का प्रयोग किया है। लोकोक्ति एवं मुहावरों का भी बहुलता से प्रयोग इस काव्य धारा में हुआ है।

सामाजिक नैतिकता एवं देशी राजनीति द्वारा प्रस्तुत झूठे वादों के परिणामस्वरूप जिस कदर भ्रष्टाचार, भूखमरी, गरीबी, पारस्परिक विद्वेष एवं अविश्वास का दायरा बढ़ा है, उन सब से साठोत्तरी काव्यधारा ने रस ग्रहण किया है। अतः देश की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिस्थिति को परे रखकर इस काव्यधारा का आंकलन नहीं हो सकता है। खासकर राजनीतिक परिस्थिति जो साठोत्तरी काव्यधारा का मुख्य स्रोत है।

3.4.8 **सत्तरोत्तरी कविता :** बदलती परिस्थिति के अनुसार मनुष्य और समाज के संबंध और भी जटिल होते जा रहे हैं। इसलिए कवियों ने समाज में मनुष्य की सही स्थिति का अंकन करने हेतु हर वह परिस्थितियों से अपनी कविता को जोड़ने का प्रयास किया है जो मनुष्य से प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। सत्तरोत्तरी कविता, कविता के परिवर्तन की वह स्थिति है जहॉ हिन्दी कविता वाद मुक्त होकर समकालीन कविता की परिधि में आ रही थी। कविता उस रूप में ढल रही थी जिसे हम समकालीन कविता कहते हैं।

### 3.4.8.1**सत्तरोत्तरी कविता की प्रवृत्तियॉ**

3.4.8.1.1 **राजनैतिक यथार्थ का पर्दाफाश :** देश की राजनीति अवसरवादिता और आदर्शहीनता का उदाहरण बन गई है। नेतागण साधारण जनता को कोरी भाषणों के जाल में फॅसाकर अपनी कुर्सी बचा रहे हैं। कवियों ने इस राजनीतिक ढकोसले को अपनी कविता में दर्शाया है। समाजवाद के नाम पर देश की भ्रष्ट राजनीतिक नेता आम जनता का शोषण कर रही है। इसलिए जनता की चेतना को जगाने के लिए और इन शोषकों का असली चेहरा सामने लाने के लिए कवि धूमिल करते हैंः—''समाजवाद/उनकी जुबान पर अपनी सुरक्षा का/एक आधुनिक मुहावरा है/मेरे देश का समाजवाद/मालगोदाम में लटकी हुई/उन बाल्टियों की तरह है/जिन पर आग लिखा है/और उनमें भालू और पानी भरा है।''[96]इस समय की प्रमुख राजनीतिक घटना आपातकाल की थी। यह स्वतंत्र भारत के इतिहास का सबसे घिनौना पृष्ठ है। ''किराये पर लेना चाहती है मस्तिष्क/बेच देती है अनगिनत

लाठियॉ/दरवाजों पर लाद देती है लाल निशान/और झुकी हुई झोपड़ियों में/सिसकता है क्रोध उबलने के लिए।''[97]डॉ. बलदेव वंशी द्वारा संपादित 'काला इतिहास' नामक काव्य संग्रह में 34 कवियों की आपातकाल विरोधी कविताएँ संग्रहीत है। सभी सृजनात्मक कार्यों का आधार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर निर्भर है। जहॉ पर इसका हनन होता है वहॉ रचना का मूल उद्देश्य नष्टप्राय हो जाता है। इसी का विरोध इस समय के कवियों ने खासकर किया है। विकास के नाम पर किसानों की खेती छीनी जाती है और उन्हें उपयुक्त मुआवजा भी नहीं मिलता। नेताओं का पूँजीपतियों से इस नाजायज़ गठबंधन को कवि दिखाता है–''हम चेतुआ हैं बाबूजी/बस काबू में नहीं रहा शरीर यह ससुरा/पड़े हैं इस सुख के ओसरे में।/...../अपना नाम धाम कुछ भी नहीं,/बस काम ही सब कुछ है।''[98]

3.4.8.1.2 **पारिवारिक संदर्भ :** अभावग्रस्त जीवन जी रहे निम्न वर्ग के परिवार जनों की सघर्ष भरी दास्तान को इन कवियों ने अपनी कविता में चित्रित किया है।

3.4.8.1.3 **स्त्री की आज़ादी :** स्त्री पर हो रहे अत्याचार का सही चित्रण इन कवियों ने किया है। स्त्री पर जिस समाज ने रूढ़ियों और परंपराओं का भोज डाला है, उससे आज स्त्री मुक्त होना चाहती है।''पूर्वनिर्धारित रीतियों को, धार्मिक नीतियों को आज की स्वाभिमान स्त्री नहीं मानती बल्कि उसके खिलाफ आवाज उठाती है।''[99]

3.4.8.1.4 **शहरी और ग्रामीण परिवेश का चित्रण :** इन कवियों ने शहर की भावहीन एवं संवेदनशून्य जीवन को अपनी कविताओं में दिखाया है।

प्रतिक्रियाहीनता एक भयानक स्थिति है और शहर का आदमी इसका आदी है। स्वार्थ के घेरे में फसा आदमी केवल अपने बारे में सोचता है, एक असुरक्षा का भाव हमेशा रहता है। उसी प्रकार गॉव में किसान अपनी मेहनत की कमाई भी ठीक से प्राप्त नहीं करता। उसे प्राकृतिक विपधा, सूदखोरों के शोषण आदि से निरंतर संघर्ष करना पड़ता है।

3.4.8.1.5 **व्यंग्यात्मकता :** व्यंग्यात्मकता इस काल की कविता की जान है। इन कवियों ने लगभग सभी सामाजिक, राजनीतिक विषयों पर व्यंग्य कसा है। किसान, मज़दूरों, स्त्री–दलित शोषण, शहरी जीवन, व्यवस्था, सरकारी बाबुओं, नेताओं आदि सभी पर व्यंग्य किया है।''सत्तरोत्तरी कवियों ने भ्रष्टाचार, बेईमानी, असत्यवादिता, अवसरवादिता, स्वार्थपरता, अनैतिकता, चरित्रहीनता आदि पर बड़ा गंभीर व्यंग्य किया है और अपनी प्रबल परीक्षा शक्ति का परिचय दिया है।''[100]

3.4.8.1.6 **आपातकाल का विरोध :** आपातकाल में जनतांत्रिक मूल्यों पर पाबंदी लगी हुई थी। इस काल में, प्रजातंत्र, न्यायपालिका व नागरिक स्वतंत्रता पर पाबंदी थी। व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाने पर बिना किसी बात के जेल में डाला जा सकता था। जनता सहमी हुई सी थी।''आपातकालीन छुप्पी खतरनाक छुप्पी थी। इस काल में, आदमी को कुचलने के लिए धड़ाधड़ अध्यादेश जारी हुए थे। संविधान और न्यायालय कब्रगाह बना दिए गए थे। अखबार मौन थे। जो आरोप लगा रहा था वही फैसला सुना रहा था।''[101]''एक गहराते हुए आतंक की परछाइयॉ/लावा उगलती हैं कौन जाने इस तरह कैसे हवायें रोज

अपने/रुख बदलती हैं/हर तरफ मुखबीर अंधेरे चौकसी पर हैं/अब सुबह की रोशनी की बात क्यों होगी?''[102]– उमाशंकर तिवारी

3.4.8.1.7 **दलित व्यथा का चित्रण :** दलितों पर हो रहे अत्याचारों का चित्रण कवियों ने किया है। उच्च जाति के लोग सत्ता के लोगों से गठबंधन कर अपनी मनमानी करते हैं। ''दलितों पर होने वाले अन्याय और अत्याचार का कवियों ने सख्त विरोध करते हुए, उनके प्रति गहरी आत्मीयता का परिचय दिया है और दलितों में पनप रही संघर्ष चेतना को बहुत सही ठहराया है।''[103]

3.4.8.1.8 **भाषा एवं शिल्प :** सत्तरोत्तरी कवि अपने वर्ग विशेष में सीमित न रहकर जनसाधारण तक पहुॅचने की कोशिश की है। इसलिए वह जनभाषा में कविता लिखता है। वह शिल्पगत दुरूहता नहीं शिल्पगत सादगी चाहता है। इसलिए कवि तत्सम शब्दों को त्यागकर तद्भव शब्दों को ग्रहण करना चाहता है। इनका लक्ष्य क्लिष्ट एवं दुरूह शब्दों को त्यागकर जनसाधारण के लिए बोध गम्य सरल शब्दों का प्रयोग करना है।''सत्तरोत्तरी कवि कविता को सीमित दायरे से निकालकर, विशाल जन समुदाय तक पहुॅचाना चाहता है, अतः ऐसे शब्दों का उसने बहिष्कार कर, जन जीवन में प्रचलित तद्भव शब्दों को अपनाया है।''[104] सत्तरोत्तरी कवियों में ज्यादातर कवि गॉव और कस्बों से आने वाले हैं। साथ ही वह अधिकतर मध्यवर्ग एवं निम्न वर्ग से हैं। इसलिए इन्होंने अपनी कविता में देशज तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है। अपनी जिन्दगी को बेहतर बनाने में निम्न एवं मध्य वर्ग के जन समुदाय ने बहुत संघर्ष किया है। फिर भी उनका संघर्ष विफल हो जाता है। इस पराजय

भाव से उत्पन्न विडम्बना को वह साधारण जनता के बीच पहुँचाना चाहते हैं और इसलिए इन्होंने साधारण से साधारण भाषा का प्रयोग किया है। इन्होंने अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया है।

इनकी कविताओं में देशज लोकोक्तियॉ एवं मुहावरे का प्रयोग भी खूब हुआ है। 'काला अक्षर भैंस बराबर', 'भाड़ में जाएं', 'गूंगे की गुड़ सी', 'दूध की मक्खी' आदि का प्रयोग हुआ है। इन कवियों ने व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग किया है – जैसे 'तिलकू' (गोरख पाण्डेय), 'जीवनदास' (उदय प्रकाश), 'लुकमान अली' (सौमित्र मोहन), 'सेवक राम' (नरेन्द्र मोहन) आदि।

3.4.8.1.8.1 **बिम्ब एवं प्रतीक विधान :** सत्तरोत्तरी कविता में वैचारिक बिम्बों की प्रधानता है। इसके अलावा इन कवियों ने भाव बिम्ब, पारिवारिक बिम्ब का प्रयोग भी किया है। उसी प्रकार इन कवियों की कविताओं में मुख्यः व्यवस्था विरोधी एवं क्रांति की कविता होने के कारण इनमें अधिकतर ऐतिहासिक, देश संबंधी, क्रांति संबंधी, जनता संबंधी प्रतीक मिलते हैं। इसके अलावा सत्तरोत्तरी कवियों ने नए शैलियों का प्रयोग किया है–(क)वक्तव्य शैली (ख)वार्तालाप शैली(ग)किस्सागोई शैली(घ)संबोधनशैली(च)प्रश्नात्मक शैली(छ)प्रश्नोत्तरी शैली।इन शैलियों का प्रयोग कवियों ने कविता में अधिक व्यंग्यात्मकता एवं तीखापन लाने के लिए किया है। अपनी कविता को प्रभावशाली बनाने के लिए कहीं–कहीं कवियों ने अंतराल या स्पेसिंग का प्रयोग भी किया है। यह संवेदना में विस्तार एवं गहराई लाने के लिए इन्होंने किया है। कविता को प्रस्तुत

करने में इन्होंने सपाटबयानी का प्रयोग किया है। इनका मुख्य लक्ष्य आम जनता तक अपने विचारों को पहुँचाना है।

## 3.5 **निष्कर्ष**

अतः यदी हम हिंदी कविता के इतिहास पर एक नज़र डालें तो यह स्पष्ट होता है कि उसकी प्रकृति हमेशा से प्रगतिशील रही है। उसने बदलती सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति के तहत अपने को ढाला है और वह निरंतर एक विकासोन्मुख पथ पर अग्रसर हुई है।

# संदर्भ ग्रंथ सूची


1. डॉ. नगेन्द्र– हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ सं–67
2. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी– हिन्दी साहित्य का अतीतः प्रथम भाग, पृ सं–63
3. डॉ. ओमप्रकाश– प्राचीन हिन्दी काव्य, पृ सं–11
4. डॉ. रामकुमार वर्मा–हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ सं–53
5. वही, पृ सं–68
6. वही, पृ सं–68
7. वही, पृ सं–79
8. वही, पृ सं–98
9. वही, पृ सं–101
10. वही, पृ सं–117
11. वही, पृ सं–123
12. प्रभाकर क्षेत्रिय–हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका, पृ सं–57
13. गोविन्दराम शर्मा –हिन्दी साहित्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियॉ, पृ सं–99
14. डॉ. नामदेव उतकर– हिन्दी साहित्य की युगीन प्रवृत्तियॉ, पृ सं–50
15. वही, पृ सं–54
16. डॉ. रामकुमार वर्मा –हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ सं–338
17. वही, पृ सं–338
18. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ सं–84

19.डॉ. नामदेव उतकर– हिन्दी साहित्य की युगीन प्रवृत्तियॉ, पृ सं–64
20.आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ सं–183
21.डॉ. नामदेव उतकर– हिन्दी साहित्य की युगीन प्रवृत्तियॉ, पृ सं–108
22.डॉ. शिवकुमार शर्मा–हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियॉ,पृ सं–313
23.वही,पृ सं–314
24.वही,पृ सं–315
25.वही,पृ सं–318
26.वही,पृ सं–323
27.रामस्वरूप चतुर्वेदी–हिन्दी काव्य संवेदना का विकास, पृ सं–142
28.डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय–अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियॉ, पृ सं–28
29.डॉ. हरदयाल–आधुनिक हिन्दी कविता, पृ सं–32
30.डॉ. रामदरश मिश्र– आधुनिक हिन्दी कविता : सर्जनात्मक संदर्भ, पृ सं–64
31.मुरली मनोहर प्रसाद सिंह–आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ सं–37
32.श्यामचन्द्र कपूर–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ सं–197
33.डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय–अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियॉ, पृ सं–30
34.डॉ. बहादुर सिंह–हिन्दी साहित्य का विकास, पृ सं–105
35.वही,पृ सं–104
36.डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय–अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियॉ, पृ सं–33
37.वही,पृ सं–33
38.डॉ. रामदरश मिश्र– आधुनिक हिन्दी कविता : सर्जनात्मक संदर्भ, पृ सं–65
39.वही,पृ सं–65

40.आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ सं–468
41.डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय–अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियॉ, पृ सं–42
42.वही,पृ सं–70
43.वही,पृ सं–56
44.वही,पृ सं–44
45.डॉ. नगेन्द्र (संपादक)–हिन्दी वड.मय : बसवीं शती, पृ सं–117
46.डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय–अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियॉ, पृ सं–72
47.मुरली मनोहर प्रसाद सिंह–आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ सं–124
48.डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय–अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियॉ, पृ सं–110
49.श्यामचन्द्र कपूर–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ सं–247
50.डॉ. बहादुर सिंह–हिन्दी साहित्य का विकास, पृ सं–122
51.वही, पृ सं–130
52.वही, पृ सं–130
53.वही, पृ सं–131
54.वही, पृ सं–131
55.वही, पृ सं–132
56.वही, पृ सं–132
57.वही, पृ सं–133
58.डॉ. सरिता माहेश्वर–प्रगतिवाद प्रयोगवाद नयी कविता, पृ सं–75
59.वही, पृ सं–95
60.वही, पृ सं–137
61.अज्ञेय (संपादक)– तार सप्तक, भूमिका
62.डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय–अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियॉ, पृ सं–103

63.नामवर सिंह –कविता के नए प्रतिमान, पृ सं–26

64.वही, पृ सं–35

65.वही, पृ सं–36

66.डॉ. सरिता माहेश्वर–प्रगतिवाद प्रयोगवाद नयी कविता, पृ सं–166

67.वही, पृ सं–230

68.वही, पृ सं–296

69.डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय–अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियॉ, पृ सं–119

70.डॉ. सरिता माहेश्वर–प्रगतिवाद प्रयोगवाद नयी कविता, पृ सं–242

71.डॉ. रामदरश मिश्र– आधुनिक हिन्दी कविता : सर्जनात्मक संदर्भ, पृ सं–69

72.डॉ. सरिता माहेश्वर–प्रगतिवाद प्रयोगवाद नयी कविता, पृ सं–245

73.डॉ. रामदरश मिश्र– आधुनिक हिन्दी कविता : सर्जनात्मक संदर्भ, पृ सं–138

74.नामवर सिंह –कविता के नए प्रतिमान, पृ सं–93

75.डॉ. सरिता माहेश्वर–प्रगतिवाद प्रयोगवाद नयी कविता, पृ सं–257

76.वही, पृ सं–263

77.देवेश ठाकुर–नयी कविता के सात अध्याय, पृ सं–92

78.वही, पृ सं–97

79.वही, पृ सं–109

80.वही, पृ सं–120

81.डॉ. बहादुर सिंह–हिन्दी साहित्य का विकास, पृ सं–161

82.वही, पृ सं–167

83.डॉ. मनोज सोनकर–सत्तरोत्तरी हिन्दी कविता : संवेदना शिल्प और कवि, पृ सं–66

84.वही, पृ सं–78

85.जगदीश नारायण श्रीवास्तव–समकालीन कविता पर एक बहस, पृ सं–102

86.डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय–अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियॉ, पृ सं–125

87.डॉ. विश्वबंधु शर्मा–साठोत्तरी हिन्दी कविता, पृ सं–51

88.वही, पृ सं–52

89.वही, पृ सं–52

90.वही, पृ सं–53

91.वही, पृ सं–54

92.डॉ. बहादुर सिंह–हिन्दी साहित्य का विकास, पृ सं–177

93.वही, पृ सं–179

94.वही, पृ सं–179

95.वही, पृ सं–180

96.सुधामा पाण्डेय धूमिल–संसद से सड़क तक, पृ सं–139

97.डॉ. विनय–पुरर्वास का दण्ड, पृ सं–34

98.राजीव सक्सेना–कविता की कवितांतर,पृ सं–72,73

99.डॉ. मनोज सोनकर – सत्तरोत्तरी हिन्दी कविताःसंवेदना शिल्प और कवि,पृ सं–191

100. वही, पृ सं–262

101. वही, पृ सं–132

102. डॉ. शम्भुनाथ सिंह (संपादक)–नवगीत दशक 2, पृ सं–73

103. डॉ. मनोज सोनकर – सत्तरोत्तरी हिन्दी कविताःसंवेदना शिल्प और कवि, पृ सं–171

104. वही, पृ सं–688